ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

श्रीमहाभारतम्

स्वर्गारोहणपर्व

प्रथमोऽध्यायः

स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरकी बातचीत

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥

जनमेजय उवाच

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य मम पूर्वपितामहाः।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च कानि स्थानानि भेजिरे॥ १॥

जनमेजयने पूछा—मुने! मेरे पूर्वपितामह पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्र स्वर्गलोकमें पहुँचकर किन-किन स्थानोंको प्राप्त हुए? ॥ १ ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं सर्वविच्चासि मे मतः।
महर्षिणाभ्यनुज्ञातो व्यासेनाद्भुतकर्मणा॥ २॥

मैं यह सब सुनना चाहता हूँ। आप अद्भुतकर्मा महर्षि व्यासकी आज्ञा पाकर सर्वज्ञ हो गये हैं—ऐसा मेरा विश्वास है॥ २॥

वैशम्पायन उवाच

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य तव पूर्वपितामहाः।
युधिष्ठिरप्रभृतयो यदकुर्वत तच्छृणु॥ ३॥

वैशम्पायनजीने कहा—जनमेजय! जहाँ तीनों लोकोंका अन्तर्भाव है, उस स्वर्गमें पहुँचकर तुम्हारे पूर्वपितामह युधिष्ठिर आदिने जो कुछ किया, वह बताया जाता है, सुनो॥ ३॥

स्वर्गं त्रिविष्टपं प्राप्य धर्मराजो युधिष्ठिरः।
दुर्योधनं श्रिया जुष्टं ददर्शासीनमासने॥ ४॥
भ्राजमानमिवादित्यं वीरलक्ष्म्याभिसंवृतम्।
देवैर्भ्राजिष्णुभिः साध्यैः सहितं पुण्यकर्मभिः॥ ५॥

स्वर्गलोकमें पहुँचकर धर्मराज युधिष्ठिरने देखा कि दुर्योधन स्वर्गीय शोभासे सम्पन्न हो तेजस्वी देवताओं तथा पुण्यकर्मा साध्यगणोंके साथ एक दिव्य सिंहासनपर बैठकर वीरोचित शोभासे संयुक्त हो सूर्यके समान देदीप्यमान हो रहा है॥ ४-५॥

ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा दुर्योधनममर्षितः।
सहसा संनिवृत्तोऽभूच्छ्रियं दृष्ट्वा सुयोधने॥ ६॥

दुर्योधनको ऐसी अवस्थामें देख उसे मिली हुई शोभा और सम्पत्तिका अवलोकन कर राजा युधिष्ठिर अमर्षसे भर गये और सहसा दूसरी ओर लौट पड़े॥ ६॥

ब्रुवन्नुच्चैर्वचस्तान् वै नाहं दुर्योधनेन वै।
सहितः कामये लोकाँल्लुब्धेनादीर्घदर्शिना॥ ७॥
यत्कृते पृथिवी सर्वा सुहृदो बान्धवास्तथा।
हतास्माभिः प्रसह्याजौ क्लिष्टैः पूर्वं महावने॥ ८॥
द्रौपदी च सभामध्ये पाञ्चाली धर्मचारिणी।
पर्याकृष्टानवद्याङ्गी पत्नी नो गुरुसंनिधौ॥ ९॥

फिर उच्चस्वरसे उन सब लोगोंसे बोले—"देवताओ! जिसके कारण हमने अपने समस्त सुहृदों और बन्धुओंका हठपूर्वक युद्धमें संहार कर डाला और सारी पृथ्वी उजाड़ डाली, जिसने पहले हमलोगोंको महान् वनमें भारी क्लेश पहुँचाया था तथा जो निर्दोष अङ्गोंवाली हमारी धर्मपरायणा पत्नी पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको भरी सभामें गुरुजनोंके समीप घसीट लाया था, उस लोभी और अदूरदर्शी दुर्योधन-

के साथ रहकर मैं इन पुण्यलोकोंको पानेकी इच्छा नहीं रखता ॥ ७–९ ॥

अस्ति देवा न मे कामः सुयोधनमुदीक्षितुम् ।
तत्राहं गन्तुमिच्छामि यत्र ते भ्रातरो मम ॥ १० ॥

'देवगण ! मैं दुर्योधनको देखना भी नहीं चाहता; मेरी तो वहीं जानेकी इच्छा है, जहाँ मेरे भाई हैं' ॥ १० ॥

नैवमित्यब्रवीत् तं तु नारदः प्रहसन्निव ।
स्वर्गे निवासे राजेन्द्र विरुद्धं चापि नश्यति ॥ ११ ॥

यह सुनकर नारदजी उनसे हँसते हुए-से बोले, 'नहीं-नहीं, ऐसा न कहो; स्वर्गमें निवास करनेपर पहलेका वैर-विरोध शान्त हो जाता है ॥ ११ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो मैवं वोचः कथंचन ।
दुर्योधनं प्रति नृपं शृणु चेदं वचो मम ॥ १२ ॥

'महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम्हें राजा दुर्योधनके प्रति किसी तरह ऐसी बात मुँहसे नहीं निकालनी चाहिये । मेरी इस बातको ध्यान देकर सुनो ॥ १२ ॥

एष दुर्योधनो राजा पूज्यते त्रिदशैः सह ।
सद्भिश्च राजप्रवरैर्य इमे स्वर्गवासिनः ॥ १३ ॥

'ये राजा दुर्योधन देवताओंसहित उन श्रेष्ठ नरेशोंद्वारा भी पूजित एवं सम्मानित होते हैं, जो कि ये चिरकालसे स्वर्गलोकमें निवास करते हैं ॥ १३ ॥

वीरलोकगतिः प्राप्ता युद्धे हुत्वाऽऽत्मनस्तनुम् ।
यूयं सर्वे सुरसमा येन युद्धे समासिताः ॥ १४ ॥
स एष क्षत्रधर्मेण स्थानमेतदवाप्तवान् ।
भये महति योऽभीतो बभूव पृथिवीपतिः ॥ १५ ॥

'इन्होंने युद्धमें अपने शरीरकी आहुति देकर वीरोंकी गति पायी है । जिन्होंने युद्धमें देवतुल्य तेजस्वी तुम समस्त भाइयोंका डटकर सामना किया है, जो पृथ्वीपति दुर्योधन महान् भयके समय भी निर्भय बने रहे, उन्होंने क्षत्रियधर्मके अनुसार यह स्थान प्राप्त किया है ॥ १४-१५ ॥

न तन्मनसि कर्तव्यं पुत्र यद् द्यूतकारितम् ।
द्रौपद्याश्च परिक्लेशं न चिन्तयितुमर्हसि ॥ १६ ॥

'वत्स ! इनके द्वारा जूएमें जो अपराध हुआ है, उसे अब तुम्हें मनमें नहीं लाना चाहिये । द्रौपदीको भी इनसे जो क्लेश प्राप्त हुआ है, इसे अब तुम्हें भुला देना चाहिये ॥ १६ ॥

ये चान्येऽपि परिक्लेशा युष्माकं ज्ञातिकारिताः ।
संग्रामेष्वथ वान्यत्र न तान् संस्मर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥

'तुम लोगोंको अपने भाई-बन्धुओंसे युद्धमें या अन्यत्र और भी जो कष्ट उठाने पड़े हैं, उन सबको यहाँ याद रखना तुम्हारे लिये उचित नहीं है ॥ १७ ॥

समागच्छ यथान्यायं राज्ञा दुर्योधनेन वै ।
स्वर्गोऽयं नेह वैराणि भवन्ति मनुजाधिप ॥ १८ ॥

'अब तुम राजा दुर्योधनके साथ न्यायपूर्वक मिलो । नरेश्वर ! यह स्वर्गलोक है, यहाँ पहलेके वैर-विरोध नहीं रहते हैं' ॥ १८ ॥

नारदेनैवमुक्तस्तु कुरुराजो युधिष्ठिरः ।
भ्रातॄन् पप्रच्छ मेधावी वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १९ ॥

नारदजीके ऐसा कहनेपर बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिरने अपने भाइयोंका पता पूछा और यह बात कही—॥ १९ ॥

यदि दुर्योधनस्यैते वीरलोकाः सनातनाः ।
अधर्मज्ञस्य पापस्य पृथिवीसुहृदां द्रुहः ॥ २० ॥
यत्कृते पृथिवी नष्टा सहया सनरद्विपा ।
वयं च मन्युना दग्धा वैरं प्रतिचिकीर्षवः ॥ २१ ॥
ये ते वीरा महात्मानो भ्रातरो मे महाव्रताः ।
सत्यप्रतिज्ञा लोकस्य शूरा वै सत्यवादिनः ॥ २२ ॥
तेषामिदानीं के लोका द्रष्टुमिच्छामि तानहम् ।
कर्णं चैव महात्मानं कौन्तेयं सत्यसंगरम् ॥ २३ ॥

देवर्षे ! जिसके कारण घोड़े, हाथी और मनुष्योंसहित सारी पृथ्वी नष्ट हो गयी, जिसके वैरका बदला लेनेकी इच्छासे हमें भी क्रोधकी आगमें जलना पड़ा, जो धर्मका नाम भी नहीं जानता था, जिसने जीवनभर भूमण्डलके समस्त सुहृदोंके साथ द्रोह ही किया है, उस पापी दुर्योधनको यदि ये सनातन वीरलोक प्राप्त हुए हैं तो जो वे वीर, महात्मा, महान् व्रतधारी, सत्यप्रतिज्ञ विश्वविख्यात शूर और सत्यवादी मेरे भाई हैं, उन्हें इस समय कौन-से लोक प्राप्त हुए हैं ? मैं उनको देखना चाहता हूँ । कुन्तीके सत्यप्रतिज्ञ पुत्र महात्मा कर्णसे भी मिलना चाहता हूँ ॥ २०–२३ ॥

धृष्टद्युम्नं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नस्य चात्मजान् ।
ये च शस्त्रैर्वधं प्राप्ताः क्षत्रधर्मेण पार्थिवाः ॥ २४ ॥
क्व नु ते पार्थिवा ब्रह्मन्नैतान् पश्यामि नारद ।
विराटद्रुपदौ चैव धृष्टकेतुमुखांश्च तान् ॥ २५ ॥
शिखण्डिनं च पाञ्चाल्यं द्रौपदेयांश्च सर्वशः ।
अभिमन्युं च दुर्धर्षं द्रष्टुमिच्छामि नारद ॥ २६ ॥

'धृष्टद्युम्न, सात्यकि तथा धृष्टद्युम्नके पुत्रोंको भी देखना चाहता हूँ ! ब्रह्मन् ! नारदजी ! जो भूपाल क्षत्रिय-धर्मके अनुसार शस्त्रोंद्वारा वधको प्राप्त हुए हैं, वे कहाँ हैं ? मैं इन राजाओंको यहाँ नहीं देखता हूँ ।

मैं इन समस्त राजाओंसे मिलना चाहता हूँ। विराट, द्रुपद धृष्टकेतु आदि पाञ्चालराजकुमार शिखण्डी, द्रौपदीके सभी पुत्रों तथा दुर्धर्ष वीर अभिमन्युको भी मैं देखना चाहता हूँ" ॥ २४–२६ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि स्वर्गे नारदयुधिष्ठिरसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें स्वर्गमें नारद और युधिष्ठिरका संवादविषयक पहला अध्याय पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

देवदूतका युधिष्ठिरको नरकका दर्शन कराना तथा भाइयोंका करुणक्रन्दन सुनकर उनका वहीं रहनेका निश्चय करना

युधिष्ठिर उवाच

नेह पश्यामि विबुधा राधेयममितौजसम्।
भ्रातरौ च महात्मानौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ १ ॥

युधिष्ठिरने पूछा—देवताओ ! मैं यहाँ अमित-तेजस्वी राधानन्दन कर्णको क्यों नहीं देख रहा हूँ ? दोनों भाई महामनस्वी युधामन्यु और उत्तमौजा कहाँ हैं ? वे भी नहीं दिखायी देते ॥ १ ॥

जुहुवुर्ये शरीराणि रणवह्नौ महारथाः।
राजानो राजपुत्राश्च ये मदर्थे हता रणे ॥ २ ॥
क्व ते महारथाः सर्वे शार्दूलसमविक्रमाः।
तैरप्ययं जितो लोकः कच्चित् पुरुषसत्तमैः ॥ ३ ॥

जिन महारथियोंने समराग्निमें अपने शरीरोंकी आहुति दे दी, जो राजा और राजकुमार रणभूमिमें मेरे लिये मारे गये, वे सिंहके समान पराक्रमी समस्त महारथी वीर कहाँ हैं ? क्या उन पुरुषप्रवर वीरोंने भी इस स्वर्गलोकपर विजय पायी है ? ॥ २-३ ॥

यदि लोकानिमान् प्राप्तास्ते च सर्वे महारथाः।
स्थितं वित्त हि मां देवाः सहितं तैर्महात्मभिः ॥ ४ ॥

देवताओ ! यदि वे सम्पूर्ण महारथी इन लोकोंमें आये हैं तो आप समझ लें कि मैं उन महात्माओंके साथ रहूँगा ॥४॥

कच्चिन्न तैरवाप्तोऽयं नृपैर्लोकोऽक्षयः शुभः।
न तैरहं विना रंस्ये भ्रातृभिर्ज्ञातिभिस्तथा ॥ ५ ॥

परंतु यदि उन नरेशोंने यह शुभ एवं अक्षयलोक नहीं प्राप्त किया है तो मैं उन जाति-भाइयोंके बिना यहाँ नहीं रहूँगा ॥ ५ ॥

मातुर्हि वचनं श्रुत्वा तदा सलिलकर्मणि।
कर्णस्य क्रियतां तोयमिति तप्यामि तेन वै ॥ ६ ॥

युद्धके बाद जब मैं अपने मृत सम्बन्धियोंको जलाञ्जलि दे रहा था, उस समय मेरी माता कुन्तीने कहा था, 'बेटा ! कर्णको भी जलाञ्जलि देना।' माताकी यह बात सुनकर मुझे मालूम हुआ कि महात्मा कर्ण मेरे ही भाई थे। तबसे मुझे उनके लिये बड़ा दुःख होता है ॥ ६ ॥

इदं च परितप्यामि पुनः पुनरहं सुराः।
यन्मातुः सदृशौ पादौ तस्याहममितात्मनः ॥ ७ ॥
दृष्ट्वैव तौ नानुगतः कर्णं परबलार्दनम्।
न ह्यस्मान् कर्णसहितान् जयेच्छक्रोऽपि संयुगे॥ ८ ॥

देवताओ ! यह सोचकर तो मैं और भी पश्चात्ताप करता रहता हूँ कि 'महामना कर्णके दोनों चरणोंको माता कुन्तीके चरणोंके समान देखकर भी मैं क्यों नहीं शत्रुदलमर्दन कर्णका अनुगामी हो गया ?' यदि कर्ण हमारे साथ होते तो हमें इन्द्र भी युद्धमें परास्त नहीं कर सकते ॥ ७-८ ॥

तमहं यत्र तत्रस्थं द्रष्टुमिच्छामि सूर्यजम्।
अविज्ञातो मया योऽसौ घातितः सव्यसाचिना ॥ ९ ॥

ये सूर्यनन्दन कर्ण जहाँ कहीं भी हों, मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ; जिन्हें न जाननेके कारण मैंने अर्जुन-द्वारा उनका वध करवा दिया ॥ ९ ॥

भीमं च भीमविक्रान्तं प्राणेभ्योऽपि प्रियं मम।
अर्जुनं चेन्द्रसंकाशं यमौ चैव यमोपमौ ॥ १० ॥
द्रष्टुमिच्छामि तां चाहं पाञ्चालीं धर्मचारिणीम्।
न चेह स्थातुमिच्छामि सत्यमेवं ब्रवीमि वः ॥ ११ ॥

मैं अपने प्राणोंसे भी प्रियतम भयंकर पराक्रमी भाई भीमसेनको, इन्द्रतुल्य तेजस्वी अर्जुनको, यमराजके समान अजेय नकुल-सहदेवको तथा धर्मपरायणा देवी द्रौपदीको भी देखना चाहता हूँ। यहाँ रहनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है। मैं आप लोगोंसे यह सच्ची बात कहता हूँ ॥ १०-११ ॥

किं मे भ्रातृविहीनस्य स्वर्गेण सुरसत्तमाः ।
यत्र ते मम स स्वर्गो नायं स्वर्गो मतो मम ॥ १२ ॥

सुरश्रेष्ठगण ! अपने भाइयोंसे अलग रहकर इस स्वर्गसे भी मुझे क्या लेना है ? जहाँ मेरे भाई हैं, वही मेरा स्वर्ग है । उनके बिना मैं इस लोकको स्वर्ग नहीं मानता ॥ १२ ॥

देवा ऊचुः

यदि वै तत्र ते श्रद्धा गम्यतां पुत्र मा चिरम् ।
प्रिये हि तव वर्तामो देवराजस्य शासनात् ॥ १३ ॥

देवता बोले—वत्स ! यदि उन लोगोंमें तुम्हारी श्रद्धा है, तो चलो, विलम्ब न करो । हमलोग देवराजकी आज्ञासे सर्वथा तुम्हारा प्रिय करना चाहते हैं ॥ १३ ॥

वैशम्पायन उवाच

इत्युक्त्वा तं ततो देवा देवदूतमुपादिशन् ।
युधिष्ठिरस्य सुहृदो दर्शयेति परंतप ॥ १४ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—शत्रुओंको संताप देनेवाले जनमेजय ! युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर देवताओंने देवदूतको आज्ञा दी—'तुम युधिष्ठिरको इनके सुहृदोंका दर्शन कराओ' ॥ १४ ॥

ततः कुन्तीसुतो राजा देवदूतश्च जग्मतुः ।
सहितौ राजशार्दूल यत्र ते पुरुषर्षभाः ॥ १५ ॥

नृपश्रेष्ठ ! तब कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर और देवदूत दोनों साथ-साथ उस स्थानकी ओर चले, जहाँ वे पुरुषप्रवर भीमसेन आदि थे ॥ १५ ॥

अग्रतो देवदूतश्च ययौ राजा च पृष्ठतः ।
पन्थानमशुभं दुर्गं सेवितं पापकर्मभिः ॥ १६ ॥

आगे-आगे देवदूत जा रहा था और पीछे-पीछे राजा युधिष्ठिर । दोनों ऐसे दुर्गम मार्गपर जा पहुँचे, जो बहुत ही अशुभ था । पापाचारी मनुष्य ही यातना भोगनेके लिये उसपर आते-जाते थे ॥ १६ ॥

तमसा संवृतं घोरं केशशैवलशाद्वलम् ।
युक्तं पापकृतां गन्धैर्मांसशोणितकर्दमम् ॥ १७ ॥

वहाँ घोर अन्धकार छा रहा था । केश, सेवार और घास इन्हींसे वह मार्ग भरा हुआ था । वह पापियोंके ही योग्य था । वहाँ दुर्गन्ध फैल रही थी । मांस और रक्तकी कीच जमी हुई थी ॥ १७ ॥

दंशोत्पातकभल्लूकमक्षिकामशकावृतम् ।
इतश्चेतश्च कुणपैः समन्तात् परिवारितम् ॥ १८ ॥

उस रास्तेपर डाँस, मच्छर, मक्खी, उत्पाती जीवजन्तु और भालू आदि फैले हुए थे । इधर-उधर सब ओर सड़े मुर्दे पड़े हुए थे ॥ १८ ॥

अस्थिकेशसमाकीर्णं कृमिकीटसमाकुलम् ।
ज्वलनेन प्रदीप्तेन समन्तात् परिवेष्टितम् ॥ १९ ॥

हड्डियाँ और केश चारों ओर फैले हुए थे । कृमि और कीटोंसे वह मार्ग भरा हुआ था । उसे चारों ओरसे जलती आगने घेर रक्खा था ॥ १९ ॥



अयोमुखैश्च काकाद्यैर्गृध्रैश्च समभिद्रुतम् ।
सूचीमुखैस्तथा प्रेतैर्विन्ध्यशैलोपमैर्वृतम् ॥ २० ॥

लोहेकी-सी चोंचवाले कौए और गीध आदि पक्षी मँडरा रहे थे । सूईके समान चुभते हुए मुखोंवाले और विन्ध्यपर्वतके समान विशालकाय प्रेत वहाँ सब ओर घूम रहे थे ॥ २० ॥

मेदोरुधिरयुक्तैश्च छिन्नबाहूरुपाणिभिः ।
निकृत्तोदरपादैश्च तत्र तत्र प्रवेरितैः ॥ २१ ॥

वहाँ यत्र-तत्र बहुत-से मुर्दे बिखरे पड़े थे, उनमेंसे किसीके शरीरसे रुधिर और मेद बहते थे, किसीके बाहु, ऊरु, पेट और हाथ-पैर कट गये थे ॥ २१ ॥

स तत्कुणपदुर्गन्धमशिवं लोमहर्षणम् ।
जगाम राजा धर्मात्मा मध्ये बहु विचिन्तयन् ॥ २२ ॥

धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर मन-ही-मन बहुत चिन्ता करते हुए उसी मार्गके बीचसे होकर निकले, जहाँ सड़े मुर्दोंकी बदबू फैल रही थी और अमङ्गलकारी बीभत्स दृश्य दिखायी



देवदूतका युधिष्ठिरको मायामय नरकका दर्शन कराना

देता था। वह भयंकर मार्ग रोंगटे खड़े कर देनेवाला था ॥ २२ ॥

ददर्शोष्णोदकैः पूर्णां नदीं चापि सुदुर्गमाम्।
असिपत्रवनं चैव निशितं क्षुरसंवृतम् ॥ २३ ॥

आगे जाकर उन्होंने देखा, खौलते हुए पानीसे भरी हुई एक नदी बह रही है, जिसके पार जाना बहुत ही कठिन है। दूसरी ओर तीखी तलवारों या छूरोंके-से पत्तोंसे परिपूर्ण तेज धारवाला असिपत्र नामक वन है ॥ २३ ॥

करम्भवालुकास्तप्ता आयसीश्च शिलाः पृथक्।
लोहकुम्भीश्च तैलस्य क्वाथ्यमानाः समन्ततः ॥ २४ ॥

कहीं गरम-गरम बालू बिछी है तो कहीं तपाये हुए लोहेकी बड़ी-बड़ी चट्टानें रक्खी गयी हैं। चारों ओर लोहेके कलशोंमें तेल खौलाया जा रहा है ॥ २४ ॥

कूटशाल्मलिकं चापि दुःस्पर्शं तीक्ष्णकण्टकम्।
ददर्श चापि कौन्तेयो यातनाः पापकर्मिणाम् ॥ २५ ॥

जहाँ-तहाँ पैने काँटोंसे भरे हुए सेमलके वृक्ष हैं, जिनको हाथसे छूना भी कठिन है। कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने यह भी देखा कि वहाँ पापाचारी जीवोंको बड़ी कठोर यातनाएँ दी जा रही हैं ॥ २५ ॥

स तं दुर्गन्धमालक्ष्य देवदूतमुवाच ह।
कियदध्वानमस्माभिर्गन्तव्यमिममीदृशम् ॥ २६ ॥
क्व च ते भ्रातरो मह्यं तन्ममाख्यातुमर्हसि।
देशोऽयं कश्च देवानामेतदिच्छामि वेदितुम् ॥ २७ ॥

वहाँकी दुर्गन्धका अनुभव करके उन्होंने देवदूतसे पूछा—'भैया! ऐसे रास्तेपर अभी हमलोगोंको कितनी दूर और चलना है? तथा मेरे वे भाई कहाँ हैं? यह तुम्हें मुझे बता देना चाहिये। देवताओंका यह कौन-सा देश है, इस बातको मैं जानना चाहता हूँ' ॥ २६-२७ ॥

स संनिववृते श्रुत्वा धर्मराजस्य भाषितम्।
देवदूतोऽब्रवीच्चैनमेतावद् गमनं तव ॥ २८ ॥

धर्मराजकी यह बात सुनकर देवदूत लौट पड़ा और बोला—'बस, यहींतक आपको आना था ॥ २८ ॥

निवर्तितव्यो हि मया तथास्म्युक्तो दिवौकसैः।
यदि श्रान्तोऽसि राजेन्द्र त्वमथागन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

'महाराज! देवताओंने मुझसे कहा है कि जब युधिष्ठिर थक जायँ, तब उन्हें वापस लौटा लाना; अतः अब मुझे आपको लौटा ले चलना है। यदि आप थक गये हों तो मेरे साथ आइये' ॥ २९ ॥

युधिष्ठिरस्तु निर्विण्णस्तेन गन्धेन मूर्च्छितः।
निवर्तने धृतमनाः पर्यावर्तत भारत ॥ ३० ॥

भरतनन्दन! युधिष्ठिर वहाँकी दुर्गन्धसे घबरा गये थे। उन्हें मूर्च्छा-सी आने लगी थी। इसलिये उन्होंने मनमें लौट जानेका ही निश्चय किया और उस निश्चयके अनुसार वे लौट पड़े ॥ ३० ॥

स संनिवृत्तो धर्मात्मा दुःखशोकसमाहतः।
शुश्राव तत्र वदतां दीना वाचः समन्ततः ॥ ३१ ॥

दुःख और शोकसे पीड़ित हुए धर्मात्मा युधिष्ठिर ज्यों ही वहाँसे लौटने लगे, त्यों ही उन्हें चारों ओरसे पुकारनेवाले आर्त मनुष्योंकी दीन वाणी सुनायी पड़ी— ॥ ३१ ॥

भो भो धर्मज राजर्षे पुण्याभिजन पाण्डव।
अनुग्रहार्थमस्माकं तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम् ॥ ३२ ॥

'हे धर्मनन्दन! हे राजर्षे! हे पवित्र कुलमें उत्पन्न पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर! आप हमलोगोंपर कृपा करनेके लिये दो घड़ीतक यहीं ठहरिये ॥ ३२ ॥

आयाति त्वयि दुर्धर्षे वाति पुण्यः समीरणः।
तव गन्धानुगस्तात येनास्मान् सुखमागमत् ॥ ३३ ॥

'आप दुर्धर्ष महापुरुषके आते ही परम पवित्र हवा चलने लगी है। तात! वह हवा आपके शरीरकी सुगन्ध लेकर आ रही है, जिससे हमलोगोंको बड़ा सुख मिला है ॥ ३३ ॥

ते वयं पार्थ दीर्घस्य कालस्य पुरुषर्षभ।
सुखमासादयिष्यामस्त्वां दृष्ट्वा राजसत्तम ॥ ३४ ॥

'पुरुषप्रवर! कुन्तीकुमार! नृपश्रेष्ठ! आज दीर्घकालके पश्चात् आपका दर्शन पाकर हम सुखका अनुभव करेंगे ॥ ३४ ॥

संतिष्ठस्व महाबाहो मुहूर्तमपि भारत।
त्वयि तिष्ठति कौरव्य यातनास्मान् न बाधते ॥ ३५ ॥

'महाबाहु भरतनन्दन! हो सके तो दो घड़ी भी ठहर जाइये। कुरुनन्दन! आपके रहनेसे यहाँकी यातना हमें कष्ट नहीं दे रही है' ॥ ३५ ॥

एवं बहुविधा वाचः कृपणा वेदनावताम्।
तस्मिन् देशे स शुश्राव समन्ताद् वदतां नृप ॥ ३६ ॥

नरेश्वर ! इस प्रकार वहाँ कष्ट पानेवाले दुखी प्राणियोंके भाँति-भाँतिके दीन वचन उस प्रदेशमें उन्हें चारों ओरसे सुनायी देने लगे ॥ ३६ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा दयावान् दीनभाषिणाम् ।
अहो कृच्छ्रमिति प्राह तस्थौ स च युधिष्ठिरः ॥ ३७ ॥

दीनतापूर्ण वचन कहनेवाले उन प्राणियोंकी बातें सुनकर दयालु राजा युधिष्ठिर वहाँ खड़े हो गये। उनके मुँहसे सहसा निकल पड़ा, 'अहो ! इन बेचारोंको बड़ा कष्ट है' ॥ ३७ ॥

स ता गिरः पुरस्ताद् वै श्रुतपूर्वा पुनः पुनः ।
ग्लानानां दुःखितानां च नाभ्यजानत पाण्डवः ॥ ३८ ॥

महान् कष्ट और दुःखमें पड़े हुए प्राणियोंकी वे ही पहलेकी सुनी हुई करुणाजनक बातें सामनेकी ओरसे बारंबार उनके कानोंमें पड़ने लगीं तो भी वे पाण्डुकुमार उन्हें पहचान न सके ॥ ३८ ॥

अबुध्यमानस्ता वाचो धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
उवाच के भवन्तो वै किमर्थमिह तिष्ठथ ॥ ३९ ॥

उनकी वे बातें पूर्णरूपसे न समझकर धर्मपुत्र युधिष्ठिरने पूछा—'आपलोग कौन हैं और किस लिये यहाँ रहते हैं ?' ॥ ३९ ॥

इत्युक्तास्ते ततः सर्वे समन्तादवभाषिरे ।
कर्णोऽहं भीमसेनोऽहमर्जुनोऽहमिति प्रभो ॥ ४० ॥
नकुलः सहदेवोऽहं धृष्टद्युम्नोऽहमित्युत ।
द्रौपदी द्रौपदेयाश्च इत्येवं ते विचुक्रुशुः ॥ ४१ ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर वे सब चारों ओरसे बोलने लगे—'प्रभो ! मैं कर्ण हूँ। मैं भीमसेन हूँ। मैं अर्जुन हूँ। मैं नकुल हूँ। मैं सहदेव हूँ। मैं धृष्टद्युम्न हूँ। मैं द्रौपदी हूँ और हमलोग द्रौपदीके पुत्र हैं।' इस प्रकार वे सब लोग चिल्ला-चिल्लाकर अपना-अपना नाम बताने लगे ॥ ४०-४१ ॥

ता वाचः स तदा श्रुत्वा तद्देशसदृशीर्नृप ।
ततो विममृशे राजा किं त्विदं दैवकारितम् ॥ ४२ ॥

नरेश्वर ! उस देशके अनुरूप उन बातोंको सुनकर राजा युधिष्ठिर मन-ही-मन विचार करने लगे 'कि दैवका यह कैसा विधान है ॥ ४२ ॥

किं तु तत् कलुषं कर्म कृतमेभिर्महात्मभिः ।
कर्णेन द्रौपदेयैर्वा पाञ्चाल्या वा सुमध्यया ॥ ४३ ॥

य इमे पापगन्धेऽस्मिन् देशे सन्ति सुदारुणे ।
नाहं जानामि सर्वेषां दुष्कृतं पुण्यकर्मणाम् ॥ ४४ ॥

'मेरे इन महामना भाइयोंने, कर्णने, द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंने अथवा स्वयं सुमध्यमा द्रौपदीने भी कौन-सा ऐसा पाप किया था, जिससे ये लोग इस दुर्गन्धपूर्ण भयंकर स्थानमें निवास करते हैं। इन समस्त पुण्यात्मा पुरुषोंने कभी कोई पाप किया था, इसे मैं नहीं जानता ॥ ४३-४४ ॥

किं कृत्वा धृतराष्ट्रस्य पुत्रो राजा सुयोधनः ।
तथा श्रिया युतः पापैः सह सर्वैः पदानुगैः ॥ ४५ ॥

'धृतराष्ट्रका पुत्र राजा सुयोधन कौन-सा पुण्यकर्म करके अपने समस्त पापी सेवकोंके साथ वैसी अद्भुत शोभा और सम्पत्तिसे संयुक्त हुआ है ? ॥ ४५ ॥

महेन्द्र इव लक्ष्मीवानास्ते परमपूजितः ।
कस्येदानीं विकारोऽयं य इमे नरकं गताः ॥ ४६ ॥

'वह तो यहाँ अत्यन्त सम्मानित होकर महेन्द्रके समान राजलक्ष्मीसे सम्पन्न हुआ है। इधर यह किस कर्मका फल है कि ये मेरे सगे-सम्बन्धी नरकमें पड़े हुए हैं ? ॥ ४६ ॥

सर्वधर्मविदः शूराः सत्यागमपरायणाः ।
क्षत्रधर्मरताः सन्तो यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ ४७ ॥

'मेरे भाई सम्पूर्ण धर्मके ज्ञाता, शूरवीर, सत्यवादी तथा शास्त्रके अनुकूल चलनेवाले थे। इन्होंने क्षत्रियधर्ममें तत्पर रहकर बड़े-बड़े यज्ञ किये और बहुत-सी दक्षिणाएँ दी हैं (तथापि इनकी ऐसी दुर्गति क्यों हुई) ? ॥ ४७ ॥

किं नु सुप्तोऽस्मि जागर्मि चेतयामि न चेतये ।
अहो चित्तविकारोऽयं स्याद् वा मे चित्तविभ्रमः॥ ४८ ॥

'क्या मैं सोता हूँ या जागता हूँ ? मुझे चेत है या नहीं ? अहो ! यह मेरे चित्तका विकार तो नहीं है अथवा हो सकता है यह मेरे मनका भ्रम हो' ॥ ४८ ॥

एवं बहुविधं राजा विममर्श युधिष्ठिरः ।
दुःखशोकसमाविष्टश्चिन्ताव्याकुलितेन्द्रियः ॥ ४९ ॥

दुःख और शोकके आवेशसे युक्त हो राजा युधिष्ठिर इस तरह नाना प्रकारसे विचार करने लगे। उस समय उनकी सारी इन्द्रियाँ चिन्तासे व्याकुल हो गयी थीं ॥ ४९ ॥

क्रोधमाहारयच्चैव तीव्रं धर्मसुतो नृपः ।
देवांश्च गर्हयामास धर्मं चैव युधिष्ठिरः ॥ ५० ॥

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके मनमें तीव्र रोष जाग उठा। वे देवताओं और धर्मको कोसने लगे ॥ ५० ॥

स तीव्रगन्धसंतप्तो देवदूतमुवाच ह।
गम्यतां तत्र येषां त्वं दूतस्तेषामुपान्तिकम् ॥ ५१ ॥
न ह्यहं तत्र यास्यामि स्थितोऽस्मीति निवेद्यताम्।
मत्संश्रयादिमे दूताः सुखिनो भ्रातरो हि मे ॥ ५२ ॥

उन्होंने वहाँकी दुःसह दुर्गन्धसे संतप्त होकर देवदूतसे कहा—'तुम जिनके दूत हो, उनके पास लौट जाओ। मैं वहाँ नहीं चलूँगा। यहीं ठहर गया हूँ, अपने मालिकोंको इसकी सूचना दे देना। यहाँ ठहरनेका कारण यह है कि मेरे निकट रहनेसे यहाँ मेरे इन दुखी भाई-बन्धुओंको सुख मिलता है' ॥ ५१-५२ ॥

इत्युक्तः स तदा दूतः पाण्डुपुत्रेण धीमता।
जगाम तत्र यत्रास्ते देवराजः शतक्रतुः ॥ ५३ ॥

बुद्धिमान् पाण्डुपुत्रके ऐसा कहनेपर देवदूत उस समय उस स्थानको चला गया, जहाँ सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले देवराज इन्द्र विराजमान थे ॥ ५३ ॥

निवेदयामास च तद् धर्मराजचिकीर्षितम्।
यथोक्तं धर्मपुत्रेण सर्वमेव जनाधिप ॥ ५४ ॥

नरेश्वर ! दूतने वहाँ धर्मपुत्र युधिष्ठिरकी कही हुई सारी बातें कह सुनायीं और यह भी निवेदन कर दिया कि वे क्या करना चाहते हैं ॥ ५४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरनरकदर्शने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें युधिष्ठिरको नरकका दर्शनविषयक दूसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः

इन्द्र और धर्मका युधिष्ठिरको सान्त्वना देना तथा युधिष्ठिरका शरीर त्यागकर दिव्य लोकको जाना

वैशम्पायन उवाच

स्थिते मुहूर्तं पार्थे तु धर्मराजे युधिष्ठिरे।
आजग्मुस्तत्र कौरव्य देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! कुन्तीकुमार धर्मराज युधिष्ठिरको उस स्थानपर खड़े हुए अभी दो ही घड़ी बीतने पायी थी कि इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवता वहाँ आ पहुँचे ॥ १ ॥

स च विग्रहवान् धर्मो राजानं प्रसमीक्षितुम्।
तत्राजगाम यत्रासौ कुरुराजो युधिष्ठिरः ॥ २ ॥

साक्षात् धर्म भी शरीर धारण करके राजासे मिलनेके लिये उस स्थानपर आये, जहाँ वे कुरुराज युधिष्ठिर विद्यमान थे ॥

तेषु भासुरदेहेषु पुण्याभिजनकर्मसु।
समागतेषु देवेषु व्यगमत् तत् तमो नृप ॥ ३ ॥

राजन् ! जिनके कुल और कर्म पवित्र हैं, उन तेजस्वी शरीर-वाले देवताओंके आते ही वहाँका सारा अन्धकार दूर हो गया ॥

नादृश्यन्त च तास्तत्र यातनाः पापकर्मिणाम्।
नदी वैतरणी चैव कूटशाल्मलिना सह ॥ ४ ॥
लोहकुम्भ्यः शिलाश्चैव नादृश्यन्त भयानकाः।

वहाँ पापकर्मी पुरुषोंको जो यातनाएँ दी जाती थीं, वे सहसा अदृश्य हो गयीं। न वैतरणी नदी रह गयी, न कूट-शाल्मलि वृक्ष। लोहेके कुम्भ और लोहमयी भयंकर तप्त शिलाएँ भी नहीं दिखायी देती थीं ॥ ४½ ॥

विकृतानि शरीराणि यानि तत्र समन्ततः ॥ ५ ॥
ददर्श राजा कौरव्यस्तान्यदृश्यानि चाभवन्।
ततो वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ॥ ६ ॥
ववौ देवसमीपस्थः शीतलोऽतीव भारत।

कुरुकुलनन्दन राजा युधिष्ठिरने वहाँ चारों ओर जो विकृत शरीर देखे थे, वे सभी अदृश्य हो गये। तदनन्तर वहाँ पावन सुगन्ध लेकर बहनेवाली पवित्र सुखदायिनी वायु चलने लगी। भारत ! देवताओंके समीप बहती हुई वह वायु अत्यन्त शीतल प्रतीत होती थी ॥ ५-६½ ॥

मरुतः सह शक्रेण वसवश्चाश्विनौ सह ॥ ७ ॥
साध्या रुद्रास्तथाऽऽदित्या ये चान्येऽपि दिवौकसः।
सर्वे तत्र समाजग्मुः सिद्धाश्च परमर्षयः ॥ ८ ॥
यत्र राजा महातेजा धर्मपुत्रः स्थितोऽभवत्।

इन्द्रके साथ मरुद्गण, वसुगण, दोनों अश्विनीकुमार, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, अन्यान्य देवलोकवासी सिद्ध और महर्षि सभी उस स्थानपर आये, जहाँ महातेजस्वी धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर खड़े थे ॥ ७-८½ ॥

ततः शक्रः सुरपतिः श्रिया परमया युतः ॥ ९ ॥
युधिष्ठिरमुवाचेदं सान्त्वपूर्वमिदं वचः ।

तदनन्तर उत्तम शोभासे सम्पन्न देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरको सान्त्वना देते हुए इस प्रकार कहा—॥ ९½ ॥

युधिष्ठिर महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ १० ॥
एह्येहि पुरुषव्याघ्र कृतमेतावता विभो ।
सिद्धिः प्राप्ता महाबाहो लोकाश्चाप्यक्षयास्तव ॥ ११ ॥

'महाबाहु युधिष्ठिर ! तुम्हें अक्षयलोक प्राप्त हुए हैं । पुरुषसिंह ! प्रभो ! अबतक जो हुआ सो हुआ । अब अधिक कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं है । आओ हमारे साथ चलो । महाबाहो ! तुम्हें बहुत बड़ी सिद्धि मिली है । साथ ही अक्षयलोकोंकी भी प्राप्ति हुई है ॥ १०-११ ॥

न च मन्युस्त्वया कार्यः शृणु चेदं वचो मम ।
अवश्यं नरकस्तात द्रष्टव्यः सर्वराजभिः ॥ १२ ॥

'तात ! तुम्हें जो नरक देखना पड़ा है, इसके लिये क्रोध न करना । मेरी यह बात सुनो । समस्त राजाओंको निश्चय ही नरक देखना पड़ता है ॥ १२ ॥

शुभानामशुभानां च द्वौ राशी पुरुषर्षभ ।
यः पूर्वं सुकृतं भुङ्क्ते पश्चान्निरयमेव सः ॥ १३ ॥

'पुरुषप्रवर ! मनुष्यके जीवनमें शुभ और अशुभ कर्मोंकी दो राशियाँ सञ्चित होती हैं । जो पहले ही शुभ कर्म भोग लेता है, उसे पीछे नरकमें ही जाना पड़ता है ॥ १३ ॥

पूर्वं नरकभाग् यस्तु पश्चात् स्वर्गमुपैति सः ।
भूयिष्ठं पापकर्मा यः स पूर्वं स्वर्गमश्नुते ॥ १४ ॥

'परंतु जो पहले नरक भोग लेता है, वह पीछे स्वर्गमें जाता है । जिसके पास पापकर्मोंका संग्रह अधिक है, वह पहले ही स्वर्ग भोग लेता है ॥ १४ ॥

तेन त्वमेवं गमितो मया श्रेयोऽर्थिना नृप ।
व्याजेन हि त्वया द्रोण उपचीर्णः सुतं प्रति ॥ १५ ॥
व्याजेनैव ततो राजन् दर्शितो नरकस्तव ।

'नरेश्वर ! मैंने तुम्हारे कल्याणकी इच्छासे तुम्हें पहले ही इस प्रकार नरकका दर्शन करानेके लिये यहाँ भेज दिया है । राजन् ! तुमने गुरुपुत्र अश्वत्थामाके विषयमें छलसे काम लेकर द्रोणाचार्यको उनके पुत्रकी मृत्युका विश्वास दिलाया था, इसलिये तुम्हें भी छलसे ही नरक दिखलाया गया है ॥

यथैव त्वं तथा भीमस्तथा पार्थो यमौ तथा ॥ १६ ॥
द्रौपदी च तथा कृष्णा व्याजेन नरकं गताः ।

'जैसे तुम यहाँ लाये गये थे, उसी प्रकार भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा द्रुपदकुमारी कृष्णा—ये सभी छलसे नरकके निकट लाये गये थे ॥ १६½ ॥

आगच्छ नरशार्दूल मुक्तास्ते चैव कल्मषात् ॥ १७ ॥
स्वपक्ष्याश्चैव ये तुभ्यं पार्थिवा निहता रणे ।
सर्वे स्वर्गमनुप्राप्तास्तान् पश्य भरतर्षभ ॥ १८ ॥

'पुरुषसिंह ! आओ, वे सभी पापसे मुक्त हो गये हैं । भरतश्रेष्ठ ! तुम्हारे पक्षके जो-जो राजा युद्धमें मारे गये हैं, वे सभी स्वर्गलोकमें आ पहुँचे हैं । चलो, उनका दर्शन करो ॥ १७-१८ ॥

कर्णश्चैव महेष्वासः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
स गतः परमां सिद्धिं यदर्थं परितप्यसे ॥ १९ ॥

'तुम जिनके लिये सदा संतप्त रहते हो, वे सम्पूर्ण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ महाधनुर्धर कर्ण भी परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं ॥ १९ ॥

तं पश्य पुरुषव्याघ्रमादित्यतनयं विभो ।
स्वस्थानस्थं महाबाहो जहि शोकं नरर्षभ ॥ २० ॥

'प्रभो ! नरश्रेष्ठ ! महाबाहो ! तुम पुरुषसिंह सूर्यकुमार कर्णका दर्शन करो । वे अपने स्थानमें स्थित हैं । तुम उनके लिये शोक त्याग दो ॥ २० ॥

भ्रातॄंश्चान्यांस्तथा पश्य स्वपक्ष्यांश्चैव पार्थिवान् ।
स्वं स्वं स्थानमनुप्राप्तान् व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥ २१ ॥

'अपने दूसरे भाइयोंको तथा पाण्डवपक्षके अन्यान्य राजाओंको भी देखो । वे सब अपने-अपने योग्य स्थानको प्राप्त हुए हैं । उन सबकी सद्गतिके विषयमें अब तुम्हारी मानसिक चिन्ता दूर हो जानी चाहिये ॥ २१ ॥

कृच्छ्रं पूर्वं चानुभूय इतःप्रभृति कौरव ।
विहरस्व मया सार्धं गतशोको निरामयः ॥ २२ ॥

'कुरुनन्दन ! पहले कष्टका अनुभव करके अबसे तुम

मेरे साथ रहकर रोग-शोकसे रहित हो स्वच्छन्द विहार करो ॥

कर्मणां तात पुण्यानां जितानां तपसा स्वयम् ।
दानानां च महाबाहो फलं प्राप्नुहि पार्थिव ॥ २३ ॥

'तात ! महाबाहु ! पृथ्वीनाथ ! अपने किये हुए पुण्य-कर्मोंका, तपस्यासे जीते हुए लोकोंका और दानोंका फल भोगो ॥ २३ ॥

अद्य त्वां देवगन्धर्वा दिव्याश्चाप्सरसो दिवि ।
उपसेवन्तु कल्याण्यो विरजोऽम्बरभूषणाः ॥ २४ ॥

'आजसे देव, गन्धर्व तथा कल्याणस्वरूपा दिव्य अप्सराएँ स्वच्छ वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित हो स्वर्गलोकमें तुम्हारी सेवा करें ॥ २४ ॥

राजसूयजिताँल्लोकानश्वमेधाभिवर्धितान् ।
प्राप्नुहि त्वं महाबाहो तपसश्च महाफलम् ॥ २५ ॥

'महाबाहो ! राजसूय यज्ञद्वारा जीते हुए तथा अश्वमेध यज्ञद्वारा वृद्धिको प्राप्त हुए पुण्य लोकोंको प्राप्त करो और अपने तपके महान् फलको भोगो ॥ २५ ॥

उपर्युपरि राज्ञां हि तव लोका युधिष्ठिर ।
हरिश्चन्द्रसमाः पार्थ येषु त्वं विहरिष्यसि ॥ २६ ॥

'कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! तुम्हें प्राप्त हुए सम्पूर्ण लोक राजा हरिश्चन्द्रके लोकोंकी भाँति सब राजाओंके लोकोंसे ऊपर है; जिनमें तुम विचरण करोगे ॥ २६ ॥

मान्धाता यत्र राजर्षिर्यत्र राजा भगीरथः ।
दौष्यन्तिर्यत्र भरतस्तत्र त्वं विहरिष्यसि ॥ २७ ॥

'जहाँ राजर्षि मान्धाता, राजा भगीरथ और दुष्यन्त-कुमार भरत गये हैं, उन्हीं लोकोंमें तुम भी विहार करोगे ॥

एषा देवनदी पुण्या पार्थ त्रैलोक्यपावनी ।
आकाशगङ्गा राजेन्द्र तत्राप्लुत्य गमिष्यसि ॥ २८ ॥

'पार्थ ! ये तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाली पुण्यसलिला देवनदी आकाशगङ्गा हैं । राजेन्द्र ! इनके जलमें गोता लगाकर तुम दिव्य लोकोंमें जा सकोगे ॥ २८ ॥

अत्र स्नातस्य भावस्ते मानुषो विगमिष्यति ।
गतशोको निरायासो मुक्तवैरो भविष्यसि ॥ २९ ॥

'मन्दाकिनीके इस पवित्र जलमें स्नान कर लेनेपर तुम्हारा मानव-स्वभाव दूर हो जायगा । तुम शोक, संताप और वैरभावसे छुटकारा पा जाओगे' ॥ २९ ॥

एवं ब्रुवति देवेन्द्रे कौरवेन्द्रं युधिष्ठिरम् ।
धर्मो विग्रहवान् साक्षादुवाच सुतमात्मनः ॥ ३० ॥

देवराज इन्द्र जब इस प्रकार कह रहे थे, उसी समय शरीर धारण करके आये हुए साक्षात् धर्मने अपने पुत्र कौरवराज युधिष्ठिरसे कहा—॥ ३० ॥

भो भो राजन् महाप्राज्ञ प्रीतोऽस्मि तव पुत्रक ।
मद्भक्त्या सत्यवाक्यैश्च क्षमया च दमेन च ॥ ३१ ॥

'महाप्राज्ञ नरेश ! मेरे पुत्र ! तुम्हारे धर्मविषयक अनुराग, सत्यभाषण, क्षमा और इन्द्रियसंयम आदि गुणोंसे मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ३१ ॥

एषा तृतीया जिज्ञासा तव राजन् कृता मया ।
न शक्यसे चालयितुं स्वभावात् पार्थ हेतुतः ॥ ३२ ॥

'राजन् ! यह मैंने तीसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी । पार्थ ! किसी भी युक्तिसे कोई तुम्हें अपने स्वभावसे विचलित नहीं कर सकता ॥ ३२ ॥

पूर्वं परीक्षितो हि त्वं प्रश्नाद् द्वैतवने मया ।
अरणीसहितस्यार्थे तच्च निस्तीर्णवानसि ॥ ३३ ॥

'द्वैतवनमें अरणिकाष्ठका अपहरण करनेके पश्चात् जब यक्षके रूपमें मैंने तुमसे कई प्रश्न किये थे, वह मेरे द्वारा तुम्हारी पहली परीक्षा थी । उसमें तुम भलीभाँति उत्तीर्ण हो गये ॥ ३३ ॥

सोदर्येषु विनष्टेषु द्रौपद्या तत्र भारत ।
श्वरूपधारिणा तत्र पुनस्त्वं मे परीक्षितः ॥ ३४ ॥

'भारत ! फिर द्रौपदीसहित तुम्हारे सभी भाइयोंकी मृत्यु हो जानेपर कुत्तेका रूप धारण करके मैंने दूसरी बार तुम्हारी परीक्षा ली थी । उसमें भी तुम सफल हुए ॥ ३४ ॥

इदं तृतीयं भ्रातॄणामर्थे यत् स्थातुमिच्छसि ।
विशुद्धोऽसि महाभाग सुखी विगतकल्मषः ॥ ३५ ॥

'अब यह तुम्हारी परीक्षाका तीसरा अवसर था; किंतु इस बार भी तुम अपने सुखकी परवा न करके भाइयोंके हितके लिये नरकमें रहना चाहते थे, अतः महाभाग ! तुम हर तरहसे शुद्ध प्रमाणित हुए । तुममें पापका नाम भी नहीं है; अतः सुखी होओ ॥ ३५ ॥

न च ते भ्रातरः पार्थ नरकार्हा विशाम्पते ।
मायैषा देवराजेन महेन्द्रेण प्रयोजिता ॥ ३६ ॥

'पार्थ ! प्रजानाथ ! तुम्हारे भाई नरकमें रहनेके योग्य

नहीं हैं। तुमने जो उन्हें नरक भोगते देखा है, वह देवराज इन्द्रद्वारा प्रकट की हुई माया थी ॥ ३६ ॥

अवश्यं नरकास्तात द्रष्टव्याः सर्वराजभिः।
ततस्त्वया प्राप्तमिदं मुहूर्तं दुःखमुत्तमम् ॥ ३७ ॥

'तात ! समस्त राजाओंको नरकका दर्शन अवश्य करना पड़ता है; इसलिये तुमने दो घड़ीतक यह महान् दुःख प्राप्त किया है ॥ ३७ ॥

न सव्यसाची भीमो वा यमौ वा पुरुषर्षभौ।
कर्णो वा सत्यवाक् शूरो नरकार्हाश्चिरं नृप ॥ ३८ ॥

'नरेश्वर ! सव्यसाची अर्जुन, भीमसेन, पुरुषप्रवर नकुल-सहदेव अथवा सत्यवादी शूरवीर कर्ण—इनमेंसे कोई भी चिरकालतक नरकमें रहनेके योग्य नहीं है ॥ ३८ ॥

न कृष्णा राजपुत्री च नरकार्हा कथंचन।
एह्येहि भरतश्रेष्ठ पश्य गङ्गां त्रिलोकगाम् ॥ ३९ ॥

'भरतश्रेष्ठ ! राजकुमारी कृष्णा भी किसी तरह नरकमें जानेयोग्य नहीं है। आओ, त्रिभुवनगामिनी गङ्गाजीका दर्शन करो' ॥ ३९ ॥

एवमुक्तः स राजर्षिस्तव पूर्वपितामहः।
जगाम सह धर्मेण सर्वैश्च त्रिदिवालयैः ॥ ४० ॥
गङ्गां देवनदीं पुण्यां पावनीमृषिसंस्तुताम्।
अवगाह्य ततो राजा तनुं तत्याज मानुषीम् ॥ ४१ ॥

जनमेजय ! धर्मके यों कहनेपर तुम्हारे पूर्वपितामह राजर्षि युधिष्ठिरने धर्म तथा समस्त स्वर्गवासी देवताओंके साथ जाकर मुनिजनवन्दित परमपावन पुण्यसलिला देवनदी गङ्गाजीमें स्नान किया। स्नान करके राजाने तत्काल अपने मानवशरीरको त्याग दिया ॥ ४०-४१ ॥

ततो दिव्यवपुर्भूत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः।
निर्वैरो गतसंतापो जले तस्मिन् समाप्लुतः ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् दिव्यदेह धारण करके धर्मराज युधिष्ठिर वैर-भावसे रहित हो गये। मन्दाकिनीके शीतल जलमें स्नान करते ही उनका सारा संताप दूर हो गया ॥ ४२ ॥

ततो ययौ वृतो देवैः कुरुराजो युधिष्ठिरः।
धर्मेण सहितो धीमान् स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ ४३ ॥
यत्र ते पुरुषव्याघ्राः शूरा विगतमन्यवः।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च स्वानि स्थानानि भेजिरे ॥ ४४ ॥

तत्पश्चात् देवताओंसे घिरे हुए बुद्धिमान् कुरुराज युधिष्ठिर महर्षियोंके मुखसे अपनी स्तुति सुनते हुए धर्मके साथ उस स्थानको गये, जहाँ वे पुरुषसिंह शूरवीर पाण्डव और धृतराष्ट्रपुत्र क्रोध त्यागकर आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थानोंपर रहते थे ॥ ४३-४४ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि युधिष्ठिरतनुत्यागे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें युधिष्ठिरका देहत्यागविषयक तीसरा अध्याय पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

युधिष्ठिरका दिव्यलोकमें श्रीकृष्ण, अर्जुन आदिका दर्शन करना

वैशम्पायन उवाच

ततो युधिष्ठिरो राजा देवैः सर्षिमरुद्गणैः।
स्तूयमानो ययौ तत्र यत्र ते कुरुपुङ्गवाः ॥ १ ॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय ! तदनन्तर देवताओं, ऋषियों और मरुद्गणोंके मुँहसे अपनी प्रशंसा सुनते हुए राजा युधिष्ठिर क्रमशः उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ वे कुरुश्रेष्ठ भीमसेन और अर्जुन आदि विराजमान थे ॥

ददर्श तत्र गोविन्दं ब्राह्मेण वपुषान्वितम्।
तेनैव दृष्टपूर्वेण सादृश्येनैव सूचितम् ॥ २ ॥

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अपने ब्राह्मविग्रहसे सम्पन्न हैं। पहलेके देखे गये सादृश्यसे ही वे पहचाने जाते हैं ॥ २ ॥

दीप्यमानं स्ववपुषा दिव्यैरस्त्रैरुपस्थितम्।
चक्रप्रभृतिभिर्घोरैर्दिव्यैः पुरुषविग्रहैः ॥ ३ ॥

उनके श्रीविग्रहसे अद्भुत दीप्ति छिटक रही है। चक्र आदि दिव्य एवं भयंकर अस्त्र-शस्त्र दिव्य पुरुषविग्रह धारण करके उनकी सेवामें उपस्थित हैं ॥ ३ ॥

उपास्यमानं वीरेण फाल्गुनेन सुवर्चसा।
यथास्वरूपं कौन्तेयो ददर्श मधुसूदनम्॥ ४॥

अत्यन्त तेजस्वी वीरवर अर्जुन भगवान्‌की आराधनामें लगे हुए हैं। कुन्तीकुमार युधिष्ठिरने भगवान् मधुसूदनका उसी स्वरूपमें दर्शन किया॥ ४॥

तावुभौ पुरुषव्याघ्रौ समुद्वीक्ष्य युधिष्ठिरम्।
यथावत् प्रतिपेदाते पूजया देवपूजितौ॥ ५॥

पुरुषसिंह अर्जुन और श्रीकृष्ण देवताओंद्वारा पूजित थे। इन दोनोंने युधिष्ठिरको उपस्थित देख उनका यथावत् सम्मान किया॥ ५॥

अपरस्मिन्नथोद्देशे कर्णं शस्त्रभृतां वरम्।
द्वादशादित्यसहितं ददर्श कुरुनन्दनः॥ ६॥

इसके बाद दूसरी ओर दृष्टि डालनेपर कुरुनन्दन युधिष्ठिरने शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कर्णको देखा, जो बारह आदित्योंके साथ (तेजोमय स्वरूप धारण किये) विराजमान थे॥

तथापरस्मिन्नुद्देशे मरुद्गणवृतं विभुम्।
भीमसेनमथापश्यत् तेनैव वपुषान्वितम्॥ ७॥
वायोर्मूर्तिमतः पार्श्वे दिव्यमूर्तिसमन्वितम्।
श्रिया परमया युक्तं सिद्धिं परमिकां गतम्॥ ८॥

फिर दूसरे स्थानमें उन्होंने दिव्यरूपधारी भीमसेनको देखा, जो पहलेहीके समान शरीर धारण किये मूर्तिमान् वायुदेवताके पास बैठे थे। उन्हें सब ओरसे मरुद्गणोंने घेर रखा था। वे उत्तम कान्तिसे सुशोभित एवं उत्कृष्ट सिद्धिको प्राप्त थे॥ ७-८॥

अश्विनोस्तु तथा स्थाने दीप्यमानौ स्वतेजसा।
नकुलं सहदेवं च ददर्श कुरुनन्दनः॥ ९॥

कुरुनन्दन युधिष्ठिरने नकुल और सहदेवको अश्विनीकुमारोंके स्थानमें विराजमान देखा, जो अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहे थे॥ ९॥

तथा ददर्श पाञ्चालीं कमलोत्पलमालिनीम्।
वपुषा स्वर्गमाक्रम्य तिष्ठन्तीमर्कवर्चसम्॥ १०॥

तदनन्तर उन्होंने कमलोंकी मालासे अलंकृत पाञ्चालराजकुमारी द्रौपदीको देखा, जो अपने तेजस्वी स्वरूपसे स्वर्गलोकको अभिभूत करके विराज रही थीं। उनकी दिव्य कान्ति सूर्यदेवकी भाँति प्रकाशित हो रही थी॥ १०॥

अखिलं सहसा राजा प्रष्टुमैच्छद् युधिष्ठिरः।
ततोऽस्य भगवानिन्द्रः कथयामास देवराट्॥ ११॥

राजा युधिष्ठिरने इन सबके विषयमें सहसा प्रश्न करनेका विचार किया। तब देवराज भगवान् इन्द्र स्वयं ही उन्हें सबका परिचय देने लगे—॥ ११॥

श्रीरेषा द्रौपदीरूपा त्वदर्थे मानुषं गता।
अयोनिजा लोककान्ता पुण्यगन्धा युधिष्ठिर॥ १२॥

'युधिष्ठिर! ये जो लोककमनीय विग्रहसे युक्त पवित्र गन्धवाली देवी दिखायी दे रही हैं, साक्षात् भगवती लक्ष्मी हैं। ये ही तुम्हारे लिये मनुष्यलोकमें जाकर अयोनिसम्भूता द्रौपदीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं॥ १२॥

रत्यर्थं भवतां ह्येषा निर्मिता शूलपाणिना।
द्रुपदस्य कुले जाता भवद्भिश्चोपजीविता॥ १३॥

'स्वयं भगवान् शंकरने तुमलोगोंकी प्रसन्नताके लिये इन्हें प्रकट किया था और ये ही द्रुपदके कुलमें जन्म धारणकर तुम सब भाइयोंके द्वारा अनुगृहीत हुई थीं॥ १३॥

एते पञ्च महाभागा गन्धर्वाः पावकप्रभाः।
द्रौपद्यास्तनया राजन् युष्माकममितौजसः॥ १४॥

'राजन्! ये जो अग्निके समान तेजस्वी और महान् सौभाग्यशाली पाँच गन्धर्व दिखायी देते हैं, ये ही तुमलोगोंके वीर्यसे उत्पन्न हुए द्रौपदीके अनन्त बलशाली पुत्र हुए थे॥ १४॥

पश्य गन्धर्वराजानं धृतराष्ट्रं मनीषिणम्।
एनं च त्वं विजानीहि भ्रातरं पूर्वजं पितुः॥ १५॥

'इन मनीषी गन्धर्वराज धृतराष्ट्रका दर्शन करो और इन्हींको अपने पिताका बड़ा भाई समझो॥ १५॥

अयं ते पूर्वजो भ्राता कौन्तेयः पावकद्युतिः।
सूतपुत्राग्रजः श्रेष्ठो राधेय इति विश्रुतः॥ १६॥

'ये रहे तुम्हारे बड़े भाई कुन्तीकुमार कर्ण, जो अग्नितुल्य तेजसे प्रकाशित हो रहे हैं। ये ही सूतपुत्रोंके श्रेष्ठ अग्रज थे और ये ही राधापुत्रके नामसे विख्यात हुए थे॥ १६॥

आदित्यसहितो याति पश्यैनं पुरुषर्षभम्।

'इन पुरुषप्रवर कर्णका दर्शन करो, ये आदित्योंके साथ जा रहे हैं॥ १६½॥

साध्यानामथ देवानां विश्वेषां मरुतामपि॥ १७॥
गणेषु पश्य राजेन्द्र वृष्ण्यन्धकमहारथान्।
सात्यकिप्रमुखान् वीरान् भोजांश्चैव महाबलान्॥ १८॥

'राजेन्द्र! उधर वृष्णि और अन्धककुलके सात्यकि आदि वीर महारथियों और महान् बलशाली भोजोंको देखो! वे साध्यों, विश्वेदेवों तथा मरुद्गणोंमें विराजमान हैं॥ १७-१८॥

सोमेन सहितं पश्य सौभद्रमपराजितम् ।
अभिमन्युं महेष्वासं निशाकरसमद्युतिम् ॥ १९ ॥

'इधर किसीसे परास्त न होनेवाले महाधनुर्धर सुभद्राकुमार अभिमन्युकी ओर दृष्टि डालो । यह चन्द्रमाके साथ इन्हींके समान कान्ति धारण किये बैठा है ॥ १९ ॥

एष पाण्डुर्महेष्वासः कुन्त्या माद्र्या च संगतः ।
विमानेन सदाभ्येति पिता तव ममान्तिकम् ॥ २० ॥

'ये महाधनुर्धर राजा पाण्डु हैं, जो कुन्ती और माद्री दोनोंके साथ हैं । ये तुम्हारे पिता पाण्डु विमानद्वारा सदा मेरे पास आया करते हैं ॥ २० ॥

वसुभिः सहितं पश्य भीष्मं शान्तनवं नृपम् ।
द्रोणं बृहस्पतेः पार्श्वे गुरुमेनं निशामय ॥ २१ ॥

'शान्तनुनन्दन राजा भीष्मका दर्शन करो, ये वसुओंके साथ विराज रहे हैं । द्रोणाचार्य बृहस्पतिके साथ हैं । अपने इन गुरुदेवको अच्छी तरह देख लो ॥ २१ ॥

एते चान्ये महीपाला योधास्तव च पाण्डव ।
गन्धर्वसहिता यान्ति यक्षपुण्यजनैस्तथा ॥ २२ ॥

'पाण्डुनन्दन ! ये तुम्हारे पक्षके दूसरे भूपाल योद्धा गन्धर्वों, यक्षों तथा पुण्यजनोंके साथ जा रहे हैं ॥ २२ ॥

गुह्यकानां गतिं चापि केचित् प्राप्ता नराधिपाः ।
त्यक्त्वा देहं जितः स्वर्गः पुण्यवाग्बुद्धिकर्मभिः ॥ २३ ॥

'किन्हीं-किन्हीं राजाओंको गुह्यकोंकी गति प्राप्त हुई है। ये सब युद्धमें शरीर त्यागकर अपनी पवित्र वाणी, बुद्धि और कर्मोंके द्वारा स्वर्गलोकपर अधिकार प्राप्त कर चुके हैं' ॥ २३ ॥

इति श्रीमहाभारते स्वर्गारोहणपर्वणि द्रौपद्यादिस्वस्वस्थानगमने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत स्वर्गारोहणपर्वमें द्रौपदी आदिका अपने-अपने स्थानमें गमनविषयक चौथा अध्याय पूरा हुआ ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

भीष्म आदि वीरोंका अपने-अपने मूलस्वरूपमें मिलना और महाभारतका उपसंहार तथा माहात्म्य

जनमेजय उवाच

भीष्मद्रोणौ महात्मानौ धृतराष्ट्रश्च पार्थिवः ।
विराटद्रुपदौ चोभौ शङ्खश्चैवोत्तरस्तथा ॥ १ ॥
धृष्टकेतुर्जयत्सेनो राजा चैव स सत्यजित् ।
दुर्योधनसुताश्चैव शकुनिश्चैव सौबलः ॥ २ ॥
कर्णपुत्राश्च विक्रान्ता राजा चैव जयद्रथः ।
घटोत्कचादयश्चैव ये चान्ये नानुकीर्तिताः ॥ ३ ॥
ये चान्ये कीर्तिता वीरा राजानो दीप्तमूर्तयः ।
स्वर्गे कालं कियन्तं ते तस्थुस्तदपि शंस मे ॥ ४ ॥

जनमेजयने पूछा—ब्रह्मन् ! महात्मा भीष्म और द्रोण, राजा धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शंख, उत्तर, धृष्टकेतु, जयत्सेन, राजा सत्यजित्, दुर्योधनके पुत्र, सुबलपुत्र शकुनि, कर्णके पराक्रमी पुत्र, राजा जयद्रथ तथा घटोत्कच आदि तथा दूसरे जो नरेश यहाँ नहीं बताये गये हैं और जिनका नाम लेकर यहाँ वर्णन किया गया है, वे सभी तेजस्वी शरीर धारण करनेवाले वीर राजा स्वर्गलोकमें कितने समयतक एक साथ रहे ? यह मुझे बताइये ॥ १–४ ॥

आहोस्विच्छाश्वतं स्थानं तेषां तत्र द्विजोत्तम ।
अन्ते वा कर्मणां कां ते गतिं प्राप्ता नरर्षभाः ॥ ५ ॥

द्विजश्रेष्ठ ! क्या उन्हें वहाँ सनातन स्थानकी प्राप्ति हुई थी ? अथवा कर्मोंका अन्त होनेपर वे पुरुषश्रेष्ठ किस गतिको प्राप्त हुए ? ॥

एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं प्रोच्यमानं द्विजोत्तम ।
तपसा हि प्रदीप्तेन सर्वं त्वमनुपश्यसि ॥ ६ ॥

विप्रवर ! मैं आपके मुखसे इस विषयको सुनना चाहता हूँ; क्योंकि आप अपनी उद्दीप्त तपस्यासे सब कुछ देखते हैं ॥

सौतिरुवाच

इत्युक्तः स तु विप्रर्षिरनुज्ञातो महात्मना ।
व्यासेन तस्य नृपतेराख्यातुमुपचक्रमे ॥ ७ ॥

सौति कहते हैं—राजा जनमेजयके इस प्रकार पूछनेपर महात्मा व्यासकी आज्ञा ले ब्रह्मर्षि वैशम्पायनने राजासे इस प्रकार कहना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

वैशम्पायन उवाच

न शक्यं कर्मणामन्ते सर्वेण मनुजाधिप ।
प्रकृतिं किं नु सम्यक्ते पृच्छैषा सम्प्रयोजिता ॥ ८ ॥

वैशम्पायनजी बोले—राजन् ! कर्मोंका भोग समाप्त हो जानेपर सभी लोग अपनी प्रकृति (मूल कारण) को नहीं प्राप्त हो जाते हैं; (कोई-कोई ही अपने कारणमें विलीन होता है) यदि पूछो, क्या मेरा प्रश्न असंगत है ? तो इसका उत्तर यह है कि जो प्रकृतिको प्राप्त नहीं हैं, उनके उद्देश्यसे तुम्हारा यह प्रश्न सर्वथा ठीक है ॥ ८ ॥

शृणु गुह्यमिदं राजन् देवानां भरतर्षभ ।
यदुवाच महातेजा दिव्यचक्षुः प्रतापवान् ॥ ९

[हे] राजन्! भरतश्रेष्ठ! यह देवताओंका गूढ़ रहस्य है। [इ]स विषयमें दिव्य नेत्रवाले, महातेजस्वी, प्रतापी मुनि व्यास[जी]ने जो कहा है, उसे बताता हूँ; सुनो— ॥ ९ ॥

[मु]निः पुराणः कौरव्य पाराशर्यो महाव्रतः।
[अ]गाधबुद्धिः सर्वज्ञो गतिज्ञः सर्वकर्मणाम् ॥ १० ॥
[ते]नोक्तं कर्मणामन्ते प्रविशन्ति स्विकां तनुम्।
[व]सूनेव महातेजा भीष्मः प्राप महाद्युतिः ॥ ११ ॥

कुरुनन्दन! जो सब कर्मोंकी गतिको जाननेवाले, अगाध [बु]द्धिसम्पन्न एवं सर्वज्ञ हैं, उन महान् व्रतधारी, पुरातन मुनि, [प]राशरनन्दन व्यासजीने तो मुझसे यही कहा है कि 'वे सभी [वी]र कर्मभोगके पश्चात् अन्ततोगत्वा अपने मूल स्वरूपमें ही [मि]ल गये थे। महातेजस्वी, परम कान्तिमान् भीष्म वसुओंके [स्व]रूपमें ही प्रविष्ट हो गये' ॥ १०-११ ॥

[अ]ष्टावेव हि दृश्यन्ते वसवो भरतर्षभ।
[बृ]हस्पतिं विवेशाथ द्रोणो ह्याङ्गिरसां वरम् ॥ १२ ॥

भरतभूषण! यही कारण है कि वसु आठ ही देखे जाते [हैं] (अन्यथा भीष्मजीको लेकर नौ वसु हो जाते)। आचार्य [द्रो]णने आङ्गिरसोंमें श्रेष्ठ बृहस्पतिजीके स्वरूपमें प्रवेश किया ॥

[कृ]तवर्मा तु हार्दिक्यः प्रविवेश मरुद्गणान्।
[स]नत्कुमारं प्रद्युम्नः प्रविवेश यथागतम् ॥ १३ ॥

हृदिकपुत्र कृतवर्मा मरुद्गणोंमें मिल गया। प्रद्युम्न जैसे [आ]ये थे, उसी तरह सनत्कुमारके स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये ॥

[धृ]तराष्ट्रो धनेशस्य लोकान् प्राप दुरासदान्।
[धृ]तराष्ट्रेण सहिता गान्धारी च यशस्विनी ॥ १४ ॥

धृतराष्ट्रने धनाध्यक्ष कुबेरके दुर्लभ लोकोंको प्राप्त किया। [उ]नके साथ यशस्विनी गान्धारी देवी भी थीं ॥ १४ ॥

[प]त्नीभ्यां सहितः पाण्डुर्महेन्द्रसदनं ययौ।
[वि]राटद्रुपदौ चोभौ धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥
[नि]शठाक्रूरसाम्बाश्च भानुः कम्पो विदूरथः।
[भू]रिश्रवाः शलश्चैव भूरिश्च पृथिवीपतिः ॥ १६ ॥
[कं]सश्चैवोग्रसेनश्च वसुदेवस्तथैव च।
[उ]त्तरश्च सह भ्रात्रा शङ्खेन नरपुङ्गवः ॥ १७ ॥
[वि]श्वेषां देवतानां ते विविशुर्नरसत्तमाः।

राजा पाण्डु अपनी दोनों पत्नियोंके साथ महेन्द्रके भवन[में] चले गये। राजा विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, [सा]म्ब, भानु, कम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, पृथ्वीपति भूरि, कंस, उग्रसेन, वसुदेव और अपने भाई शङ्खके साथ नरश्रेष्ठ उत्तर—[ये] सभी सत्पुरुष विश्वेदेवोंके स्वरूपमें मिल गये ॥ १५—१७½ ॥

[व]र्चा नाम महातेजाः सोमपुत्रः प्रतापवान् ॥ १८ ॥
[स]सोऽभिमन्युर्नृसिंहस्य फाल्गुनस्य सुतोऽभवत्।
[स] युद्ध्वा क्षत्रधर्मेण यथा नान्यः पुमान् क्वचित् ॥ १९ ॥
[स] विवेश सोमं धर्मात्मा कर्मणोऽन्ते महारथः।

चन्द्रमाके महातेजस्वी और प्रतापी पुत्र जो वर्चा हैं, वे ही पुरुषसिंह अर्जुनके पुत्र होकर अभिमन्यु नामसे विख्यात हुए थे। उन्होंने क्षत्रिय-धर्मके अनुसार ऐसा युद्ध किया था, जैसा दूसरा कोई पुरुष कभी नहीं कर सका था। उन धर्मात्मा महारथी अभिमन्युने अपना कार्य पूरा करके चन्द्रमामें ही प्रवेश किया ॥ १८-१९½ ॥

आविवेश रविं कर्णो निहतः पुरुषर्षभः ॥ २० ॥
द्वापरं शकुनिः प्राप धृष्टद्युम्नस्तु पावकम्।

पुरुषप्रवर कर्ण जो अर्जुनके द्वारा मारे गये थे, सूर्यमें प्रविष्ट हुए। शकुनिने द्वापरमें और धृष्टद्युम्नने अग्निके स्वरूपमें प्रवेश किया ॥ २०½ ॥

धृतराष्ट्रात्मजाः सर्वे यातुधाना बलोत्कटाः ॥ २१ ॥
ऋद्धिमन्तो महात्मानः शस्त्रपूता दिवं गताः।

धृतराष्ट्रके सभी पुत्र स्वर्गभोगके पश्चात् मूलतः बलोन्मत्त यातुधान (राक्षस) थे। वे समृद्धिशाली महामनस्वी क्षत्रिय होकर युद्धमें शस्त्रोंके आघातसे पवित्र हो स्वर्गलोकमें गये थे ॥

धर्ममेवाविशत् क्षत्ता राजा चैव युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥
अनन्तो भगवान् देवः प्रविवेश रसातलम्।
पितामहनियोगाद् वै यो योगाद् गामधारयत् ॥ २३ ॥

विदुर और राजा युधिष्ठिरने धर्मके ही स्वरूपमें प्रवेश किया। बलरामजी साक्षात् भगवान् अनन्तदेवके अवतार थे। वे रसातलमें अपने स्थानको चले गये। ये वे ही अनन्तदेव हैं, जिन्होंने ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर योगबलसे इस पृथ्वीको धारण कर रखा है ॥ २२-२३ ॥

यः स नारायणो नाम देवदेवः सनातनः।
तस्यांशो वासुदेवस्तु कर्मणोऽन्ते विवेश ह ॥ २४ ॥

वे जो नारायण नामसे प्रसिद्ध सनातन देवाधिदेव हैं, उन्हींके अंश वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण थे, जो अवतारका कार्य पूरा करके पुनः अपने स्वरूपमें प्रविष्ट हो गये ॥ २४ ॥

षोडश स्त्रीसहस्राणि वासुदेवपरिग्रहः।
अमज्जंस्ताः सरस्वत्यां कालेन जनमेजय ॥ २५ ॥

जनमेजय! भगवान् श्रीकृष्णकी जो सोलह हजार स्त्रियाँ थीं, उन्होंने अवसर पाकर सरस्वती नदीमें कूदकर अपने प्राण दे दिये ॥ २५ ॥

तत्र त्यक्त्वा शरीराणि दिवमारुरुहुः पुनः।
ताश्चैवाप्सरसो भूत्वा वासुदेवमुपाविशन् ॥ २६ ॥

वहाँ देहत्याग करनेके पश्चात् वे सब-की-सब पुनः स्वर्गलोकमें जा पहुँचीं और अप्सराएँ होकर पुनः भगवान् श्रीकृष्णकी सेवामें उपस्थित हो गयीं ॥ २६ ॥

हतास्तस्मिन् महायुद्धे ये वीरास्तु महारथाः।
घटोत्कचादयश्चैव देवान् यक्षांश्च भेजिरे ॥ २७ ॥

इस प्रकार उस महाभारत नामक महायुद्धमें जो-जो वीर महारथी घटोत्कच आदि मारे गये थे, वे देवताओं और यक्षों-के लोकोंमें गये ॥ २७ ॥

दुर्योधनसहायाश्च राक्षसाः परिकीर्तिताः ।
प्राप्तास्ते क्रमशो राजन् सर्वलोकाननुत्तमान् ॥ २८ ॥

राजन् ! जो दुर्योधनके सहायक थे, वे सब-के-सब राक्षस बताये गये हैं । उन्हें क्रमशः सभी उत्तम लोकोंकी प्राप्ति हुई ॥

भवनं च महेन्द्रस्य कुबेरस्य च धीमतः ।
वरुणस्य तथा लोकान् विविशुः पुरुषर्षभाः ॥ २९ ॥

वे श्रेष्ठ पुरुष क्रमशः देवराज इन्द्रके, बुद्धिमान् कुबेरके तथा वरुण देवताके लोकोंमें गये ॥ २९ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं विस्तरेण महाद्युते ।
कुरूणां चरितं कृत्स्नं पाण्डवानां च भारत ॥ ३० ॥

महातेजस्वी भरतनन्दन ! यह सारा प्रसंग—कौरवों और पाण्डवोंका सम्पूर्ण चरित्र तुम्हें विस्तारके साथ बताया गया ॥

सौतिरुवाच

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठाः स राजा जनमेजयः ।
विस्मितोऽभवदत्यर्थं यज्ञकर्मान्तरेष्वथ ॥ ३१ ॥

सौति कहते हैं—विप्रवरो ! यज्ञकर्मके बीचमें जो अवसर प्राप्त होते थे, उन्हींमें यह महाभारतका आख्यान सुनकर राजा जनमेजयको बड़ा आश्चर्य हुआ ॥ ३१ ॥

ततः समापयामासुः कर्म तत् तस्य याजकाः ।
आस्तीकश्चाभवत् प्रीतः परिमोक्ष्य भुजङ्गमान् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर उनके पुरोहितोंने उस यज्ञकर्मको समाप्त कराया । सर्पोंको प्राणसंकटसे छुटकारा दिलाकर आस्तीक मुनिको भी बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३२ ॥

ततो द्विजातीन् सर्वांस्तान् दक्षिणाभिरतोषयत् ।
पूजिताश्चापि ते राज्ञा ततो जग्मुर्यथागतम् ॥ ३३ ॥

राजाने यज्ञकर्ममें सम्मिलित हुए समस्त ब्राह्मणोंको पर्याप्त दक्षिणा देकर संतुष्ट किया तथा वे ब्राह्मण भी राजासे यथोचित सम्मान पाकर जैसे आये थे उसी तरह अपने घरको लौट गये ॥

विसर्जयित्वा विप्रांस्तान् राजापि जनमेजयः ।
ततस्तक्षशिलायाः स पुनरायाद् गजाह्वयम् ॥ ३४ ॥

उन ब्राह्मणोंको विदा करके राजा जनमेजय भी तक्षशिलासे फिर हस्तिनापुरको चले आये ॥ ३४ ॥

एतत् ते सर्वमाख्यातं वैशम्पायनकीर्तितम् ।
व्यासाज्ञया समाख्यातं सर्पसत्रे नृपस्य हि ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जनमेजयके सर्पयज्ञमें व्यासजीकी आज्ञासे मुनिवर वैशम्पायनजीने जो इतिहास सुनाया था तथा मैंने अपने पिता सूतजीसे जिसका ज्ञान प्राप्त किया था, वह सारा-का-सारा मैंने आपलोगोंके समक्ष यह वर्णन किया है ॥ ३५ ॥

पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रं चेदमुत्तमम् ।
कृष्णेन मुनिना विप्र निर्मितं सत्यवादिना ॥ ३६ ॥

ब्रह्मन् ! सत्यवादी मुनि व्यासजीके द्वारा निर्मित यह पुण्यमय इतिहास परम पवित्र एवं बहुत उत्तम है ॥ ३६ ॥

सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञानवता सता ।
अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भावितात्मना ॥ ३७ ॥
ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगवता तथा ।
नैकतन्त्रविबुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ ३८ ॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥ ३९ ॥

सर्वज्ञ, विधिविधानके ज्ञाता, धर्मज्ञ, साधु, इन्द्रियातीत ज्ञानसे सम्पन्न, शुद्ध, तपके प्रभावसे पवित्र अन्तःकरणवाले, ऐश्वर्यसम्पन्न, सांख्य एवं योगके विद्वान् तथा अनेक शास्त्रोंके पारदर्शी मुनिवर व्यासजीने दिव्य दृष्टिसे देखकर महात्मा पाण्डवों तथा अन्य प्रचुर धनसम्पन्न महातेजस्वी राजाओंकी कीर्तिका प्रसार करनेके लिये इस इतिहासकी रचना की है ॥ ३७—३९ ॥

यश्चेदं श्रावयेद् विद्वान् सदा पर्वणि पर्वणि ।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ४० ॥

जो विद्वान् प्रत्येक पर्वपर सदा इसे दूसरोंको सुनाता है, उसके सारे पाप धुल जाते हैं । उसका स्वर्गपर अधिकार हो जाता है तथा वह ब्रह्मभावकी प्राप्तिके योग्य बन जाता है ॥ ४० ॥

कार्ष्णं वेदमिमं सर्वं शृणुयाद् यः समाहितः ।
ब्रह्महत्यादिपापानां कोटिस्तस्य विनश्यति ॥ ४१ ॥

जो एकाग्रचित्त होकर इस सम्पूर्ण 'कार्ष्ण वेद'[1] का श्रवण करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पापोंका नाश हो जाता है ॥ ४१ ॥

यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः ।
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते ॥ ४२ ॥

जो श्राद्धकर्ममें ब्राह्मणोंको निकटसे महाभारतका थोड़ा-सा अंश भी सुना देता है, उसका दिया हुआ अन्नपान अक्षय होकर पितरोंको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

अह्ना यदेनः कुरुते इन्द्रियैर्मनसापि वा ।
महाभारतमाख्याय पश्चात् संध्यां प्रमुच्यते ॥ ४३ ॥

मनुष्य अपनी इन्द्रियों तथा मनसे दिनभरमें जो पाप करता है, वह सायंकालकी संध्याके समय महाभारतका पाठ करनेसे छूट जाता है ॥ ४३ ॥

यद् रात्रौ कुरुते पापं ब्राह्मणः स्त्रीगणैर्वृतः ।
महाभारतमाख्याय पूर्वां संध्यां प्रमुच्यते ॥ ४४ ॥

ब्राह्मण रात्रिके समय स्त्रियोंके समुदायसे घिरकर जो पाप करता है, वह प्रातःकालकी संध्याके समय महाभारतका पाठ करनेसे छूट जाता है ॥ ४४ ॥

भरतानां महज्जन्म तस्माद् भारतमुच्यते ।
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते ।

१. श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासके द्वारा प्रकट होनेके कारण 'कृष्णादागतः कार्ष्णः' इस व्युत्पत्तिके अनुसार यह उपाख्यान 'कार्ष्णवेद' के नामसे प्रसिद्ध है ।

निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४५ ॥

इस ग्रन्थमें भरतवंशियोंके महान् जन्मकर्मका वर्णन है, इसलिये इसे महाभारत कहते हैं। महान् और भारी होनेके कारण भी इसका नाम महाभारत हुआ है। जो महाभारतकी इस व्युत्पत्तिको जानता और समझता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है ॥ ४५ ॥

अष्टादशपुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः साङ्गास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम् ॥ ४६ ॥
श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः ॥ ४७ ॥

अठारह पुराणोंके निर्माता और वेदविद्याके महासागर महात्मा व्यास मुनिका यह सिंहनाद सुनो। वे कहते हैं— 'अठारह पुराण, सम्पूर्ण धर्मशास्त्र और छहों अङ्गोंसहित चारों वेद एक ओर तथा केवल महाभारत दूसरी ओर, यह अकेला ही उन सबके बराबर है' ॥ ४६-४७ ॥

त्रिभिर्वर्षैरिदं पूर्णं कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
अखिलं भारतं चेदं चकार भगवान् मुनिः ॥ ४८ ॥

मुनिवर भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायनने तीन वर्षोंमें इस सम्पूर्ण महाभारतको पूर्ण किया था ॥ ४८ ॥

आकर्ण्य भक्त्या सततं जयाख्यं भारतं महत्।
श्रीश्च कीर्तिस्तथा विद्या भवन्ति सहिताः सदा॥ ४९ ॥

जो जय नामक इस महाभारत इतिहासको सदा भक्तिपूर्वक सुनता रहता है, उसके यहाँ श्री, कीर्ति और विद्या तीनों साथ-साथ रहती हैं ॥ ४९ ॥

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित्॥ ५० ॥

भरतश्रेष्ठ ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके विषयमें जो कुछ महाभारतमें कहा गया है, वही अन्यत्र है। जो इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है ॥ ५० ॥

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता ॥ ५१ ॥

मोक्षकी इच्छा रखनेवाले ब्राह्मणको, राज्य चाहनेवाले क्षत्रियको तथा उत्तम पुत्रकी इच्छा रखनेवाली गर्भिणी स्त्रीको भी इस जय नामक इतिहासका श्रवण करना चाहिये ।५१।

स्वर्गकामो लभेत् स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम्।
गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम् ॥ ५२ ॥

महाभारतका श्रवण या पाठ करनेवाला मनुष्य यदि स्वर्गकी इच्छा करे तो उसे स्वर्ग मिलता है और युद्धमें विजय पाना चाहे तो विजय मिलती है। इसी प्रकार गर्भिणी स्त्रीको महाभारतके श्रवणसे सुयोग्य पुत्र या परम सौभाग्यशालिनी कन्याकी प्राप्ति होती है ॥ ५२ ॥

अनागतश्च मोक्षश्च कृष्णद्वैपायनः प्रभुः।
संदर्भं भारतस्यास्य कृतवान् धर्मकाम्यया ॥ ५३ ॥

नित्यसिद्ध मोक्षस्वरूप भगवान् कृष्णद्वैपायनने धर्मकी कामनासे इस महाभारतसंदर्भकी रचना की है ॥ ५३ ॥

षष्टिं शतसहस्राणि चकारान्यां स संहिताम्।
त्रिंशच्छतसहस्राणि देवलोके प्रतिष्ठितम् ॥ ५४ ॥
पित्र्ये पञ्चदशं ज्ञेयं यक्षलोके चतुर्दश।
एकं शतसहस्रं तु मानुषेषु प्रभाषितम् ॥ ५५ ॥

उन्होंने पहले साठ लाख श्लोकोंकी महाभारतसंहिता बनायी थी। उसमें तीस लाख श्लोकोंकी संहिताका देवलोकमें प्रचार हुआ। पंद्रह लाखकी दूसरी संहिता पितृलोकमें प्रचलित हुई। चौदह लाख श्लोकोंकी तीसरी संहिताका यक्षलोकमें आदर हुआ तथा एक लाख श्लोकोंकी चौथी संहिता मनुष्योंमें प्रचारित हुई ॥ ५४-५५ ॥

नारदोऽश्रावयद् देवानसितो देवलः पितॄन्।
रक्षोयक्षाञ्छुको मर्त्यान् वैशम्पायन एव तु ॥ ५६ ॥

देवताओंको देवर्षि नारदने, पितरोंको असित देवलने, यक्ष और राक्षसोंको शुकदेवजीने और मनुष्योंको वैशम्पायनजीने ही पहले-पहल महाभारत-संहिता सुनायी है ॥ ५६ ॥

इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम्।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः ॥ ५७ ॥
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक।
गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः॥ ५८ ॥

शौनकजी ! जो मनुष्य ब्राह्मणोंको आगे करके गम्भीर अर्थसे परिपूर्ण और वेदकी समानता करनेवाले इस व्यास-प्रणीत पवित्र इतिहासका श्रवण करता है, वह इस जगत्में सारे मनोवाञ्छित भोगों और उत्तम कीर्तिको पाकर परम सिद्धि प्राप्त कर लेता है। इस विषयमें मुझे तनिक भी संशय नहीं है ॥ ५७-५८ ॥

भारताध्ययनात् पुण्यादपि पादमधीयतः।
श्रद्धया परया भक्त्या श्राव्यते चापि येन तु ॥ ५९ ॥

जो अत्यन्त श्रद्धा और भक्तिके साथ महाभारतके एक अंशको भी सुनता या दूसरोंको सुनाता है, उसे सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है और उसीके प्रभावसे उसे उत्तम सिद्धि मिल जाती है ॥ ५९ ॥

य इमां संहितां पुण्यां पुत्रमध्यापयच्छुकम्।
मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
संसारेष्वनुभूतानि यान्ति यास्यन्ति चापरे ॥ ६० ॥

जिन भगवान् वेदव्यासने इस पवित्र संहिताको प्रकट करके अपने पुत्र शुकदेवजीको पढ़ाया था (वे महाभारतके सारभूत उपदेशका इस प्रकार वर्णन करते हैं—) 'मनुष्य इस जगत्में हजारों माता-पिताओं तथा सैकड़ों

स्त्री-पुत्रोंके संयोग-वियोगका अनुभव कर चुके हैं, करते हैं और करते रहेंगे ॥ ६० ॥

हर्षस्थानसहस्राणि भयस्थानशतानि च ।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम् ॥ ६१ ॥

'अज्ञानी पुरुषको प्रतिदिन हर्षके हजारों और भयके सैकड़ों अवसर प्राप्त होते रहते हैं; किंतु विद्वान् पुरुषके मनपर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है ॥ ६१ ॥

ऊर्ध्वबाहुर्विरौम्येष न च कश्चिच्छृणोति मे ।
धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ ६२ ॥

'मैं दोनों हाथ ऊपर उठाकर पुकार-पुकारकर कह रहा हूँ, पर मेरी बात कोई नहीं सुनता । धर्मसे मोक्ष तो सिद्ध होता ही है; अर्थ और काम भी सिद्ध होते हैं तो भी लोग उसका सेवन क्यों नहीं करते ॥ ६२ ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्
धर्मं त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये
जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ॥ ६३ ॥

'कामनासे, भयसे, लोभसे अथवा प्राण बचानेके लिये भी धर्मका त्याग न करे । धर्म नित्य है और सुख-दुःख अनित्य, इसी प्रकार जीवात्मा नित्य है और उसके बन्धनका हेतु अनित्य' ॥ ६३ ॥

इमां भारतसावित्रीं प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
स भारतफलं प्राप्य परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ६४ ॥

यह महाभारतका सारभूत उपदेश 'भारत-सावित्री' के नामसे प्रसिद्ध है । जो प्रतिदिन सबेरे उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण महाभारतके अध्ययनका फल पाकर परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लेता है ॥ ६४ ॥

यथा समुद्रो भगवान् यथा हि हिमवान् गिरिः।
ख्यातावुभौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥ ६५ ॥

जैसे ऐश्वर्यशाली समुद्र और हिमालय पर्वत दोनों ही रत्नोंकी निधि कहे गये हैं, उसी प्रकार महाभारत भी नाना प्रकारके उपदेशमय रत्नोंका भण्डार कहलाता है ॥ ६५ ॥

कार्ष्णं वेदमिमं विद्वाञ्श्रावयित्वार्थमश्नुते ।
इदं भारतमाख्यानं यः पठेत् सुसमाहितः ।
स गच्छेत् परमां सिद्धिमिति मे नास्ति संशयः॥ ६६ ॥

जो विद्वान् श्रीकृष्णद्वैपायनके द्वारा प्रसिद्ध किये गये इस महाभारतरूप पञ्चम वेदको सुनाता है, उसे अर्थकी प्राप्ति होती है । जो एकाग्रचित्त होकर इस भारत-उपाख्यानका पाठ करता है, वह मोक्षरूप परम सिद्धिको प्राप्त कर लेता है; इस विषयमें मुझे संशय नहीं है ॥ ६६ ॥

द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेयं
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च ।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥ ६७ ॥

जो वेदव्यासजीके मुखसे निकले हुए इस अप्रमेय (अतुलनीय), पुण्यदायक, पवित्र, पापहारी और कल्याणमय महाभारतको दूसरोंके मुखसे सुनता है, उसे पुष्करतीर्थके जलमें गोता लगानेकी क्या आवश्यकता है ? ॥ ६७ ॥

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय ।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥ ६८॥

जो गौओंके सींगमें सोना मढ़ाकर वेदवेत्ता एवं बहुज्ञ ब्राह्मणको सौ गौएँ दान देता है और जो महाभारतकथाका प्रतिदिन श्रवणमात्र करता है, इन दोनोंमेंसे प्रत्येकको बराबर ही फल मिलता है ॥ ६८ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां स्वर्गारोहणपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभारतनामक व्यासनिर्मित शतसाहस्री संहिताके स्वर्गारोहणपर्वमें पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ ॥ ५ ॥

स्वर्गारोहणपर्वं सम्पूर्णम्

	अनुष्टुप्	(अन्य बड़े छन्द)	बड़े छन्दोंको ३२ अक्षरोंके अनुष्टुप् मानकर गिननेपर	कुलयोग
उत्तर भारतीय पाठसे लिये गये	२१४॥	(३)	४=	२१८॥=
दक्षिण भारतीय पाठसे लिये गये	×	×	×	

स्वर्गारोहणपर्वकी कुल श्लोकसंख्या—२१८॥=

श्रीमहाभारतं सम्पूर्णम्

महाभारतश्रवणविधिः

माहात्म्य, कथा सुननेकी विधि और उसका फल

जनमेजय उवाच

भगवन् केन विधिना श्रोतव्यं भारतं बुधैः।
फलं किं के च देवाश्च पूज्या वै पारणेष्विह ॥ १ ॥
देयं समाप्ते भगवन् किं च पर्वणि पर्वणि।
वाचकः कीदृशश्चात्र एष्टव्यस्तद् वदस्व मे ॥ २ ॥

जनमेजयने पूछा—भगवन्! विद्वानोंको किस विधिसे महाभारतका श्रवण करना चाहिये? इसके सुननेसे क्या फल होता है? इसकी पारणाके समय किन-किन देवताओंका पूजन करना चाहिये? भगवन्! प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर क्या दान देना चाहिये? और इस कथाका वाचक कैसा होना चाहिये? यह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये ॥ १-२ ॥

वैशम्पायन उवाच

शृणु राजन् विधिमिमं फलं यच्चापि भारतात्।
श्रुताद् भवति राजेन्द्र यत् त्वं मामनुपृच्छसि ॥ ३ ॥

वैशम्पायनजीने कहा—राजेन्द्र! महाभारत सुननेकी जो विधि है और उसके श्रवणसे जो फल होता है, जिसके विषयमें तुमने मुझसे जिज्ञासा प्रकट की है, वह सब बता रहा हूँ; सुनो ॥ ३ ॥

दिवि देवा महीपाल क्रीडार्थमवनिं गताः।
कृत्वा कार्यमिदं चैव ततश्च दिवमागताः ॥ ४ ॥

भूपाल! स्वर्गके देवता भगवान्की लीलामें सहायता करनेके लिये पृथ्वीपर आये थे और इस कार्यको पूरा करके वे पुनः स्वर्गमें जा पहुँचे ॥ ४ ॥

हन्त यत् ते प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहितः।
ऋषीणां देवतानां च सम्भवं वसुधातले ॥ ५ ॥

अब मैं इस भूतलपर ऋषियों और देवताओंके प्रादुर्भावके विषयमें प्रसन्नतापूर्वक तुम्हें जो कुछ बताता हूँ, उसे एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ५ ॥

अत्र रुद्रास्तथा साध्या विश्वेदेवाश्च शाश्वताः।
आदित्याश्चाश्विनौ देवौ लोकपाला महर्षयः ॥ ६ ॥
गुह्यकाश्च सगन्धर्वा नागा विद्याधरास्तथा।
सिद्धा धर्मः स्वयम्भूश्च मुनिः कात्यायनो वरः ॥ ७ ॥
गिरयः सागरा नद्यस्तथैवाप्सरसां गणाः।
ग्रहाः संवत्सराश्चैव अयनान्यृतवस्तथा ॥ ८ ॥
स्थावरं जङ्गमं चैव जगत् सर्वं सुरासुरम्।
भारते भरतश्रेष्ठ एकस्थमिह दृश्यते ॥ ९ ॥

भरतश्रेष्ठ! यहाँ महाभारतमें रुद्र, साध्य, सनातन विश्वेदेव, सूर्य, अश्विनीकुमार, लोकपाल, महर्षि, गुह्यक, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, धर्म, स्वयम्भू ब्रह्मा, श्रेष्ठ मुनि कात्यायन, पर्वत, समुद्र, नदियाँ, अप्सराओंके समुदाय, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु, सम्पूर्ण चराचर जगत्, देवता और असुर—ये सब-के-सब एकत्र हुए देखे जाते हैं ॥ ६–९ ॥

तेषां श्रुत्वा प्रतिष्ठानं नामकर्मानुकीर्तनात्।
कृत्वापि पातकं घोरं सद्यो मुच्येत मानवः ॥ १० ॥

मनुष्य घोर पातक करनेपर भी उन सबकी प्रतिष्ठा सुनकर तथा प्रतिदिन उनके नाम और कर्मोंका कीर्तन करता हुआ उससे तत्काल मुक्त हो जाता है ॥ १० ॥

इतिहासमिमं श्रुत्वा यथावदनुपूर्वशः।
संयतात्मा शुचिर्भूत्वा पारं गत्वा च भारते ॥ ११ ॥
तेषां श्राद्धानि देयानि श्रुत्वा भारत भारतम्।
ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्त्या भक्त्या च भरतर्षभ ॥ १२ ॥
महादानानि देयानि रत्नानि विविधानि च।

मनुष्य अपने मनको संयममें रखते हुए बाहर-भीतरसे शुद्ध हो महाभारतमें वर्णित इस इतिहासको क्रमशः यथावत् रूपसे सुनकर इसे समाप्त करनेके पश्चात् इनमें मारे गये प्रमुख वीरोंके लिये श्राद्ध करे। भारत! भरतभूषण! महाभारत सुनकर श्रोता अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको भक्तिभावसे नाना प्रकारके रत्न आदि बड़े-बड़े दान दे ॥ ११-१२½ ॥

गावः कांस्योपदोहाश्च कन्याश्चैव स्वलंकृताः ॥ १३ ॥
सर्वकामगुणोपेता यानानि विविधानि च।
भवनानि विचित्राणि भूमिर्वासांसि काञ्चनम् ॥ १४ ॥
वाहनानि च देयानि हया मत्ताश्च वारणाः।
शयनं शिबिकाश्चैव स्यन्दनाश्च स्वलंकृताः ॥ १५ ॥
यद् यद् गृहे वरं किंचिद् यद् यदस्ति महद् वसु।
तत् तद् देयं द्विजातिभ्य आत्मा दाराश्च सूनवः ॥ १६ ॥

गौएँ, काँसीके दुग्धपात्र, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित और सम्पूर्ण मनोवाञ्छित गुणोंसे युक्त कन्याएँ, नाना प्रकारके

यान, विचित्र भवन, भूमि, वस्त्र, सुवर्ण, वाहन, घोड़े, मतवाले हाथी, शय्या, शिविकाएँ, सजे-सजाये रथ तथा घरमें जो कोई भी श्रेष्ठ वस्तु और महान् धन हो, वह सब ब्राह्मणोंको देने चाहिये। स्त्री-पुत्रोंसहित अपने शरीरको भी उनकी सेवामें लगा देना चाहिये ॥ १३—१६ ॥

श्रद्धया परया युक्तं क्रमशस्तस्य पारगः।
शक्तितः सुमना हृष्टः शुश्रूषुरविकल्पकः ॥ १७ ॥

पूर्ण श्रद्धाके साथ क्रमशः कथा सुनते हुए उसे अन्ततक पूर्णरूपसे श्रवण करना चाहिये। यथाशक्ति श्रवणके लिये उद्यत रहकर मनको प्रसन्न रखे। हृदयमें हर्षसे उल्लसित हो मनमें संशय या तर्क-वितर्क न करे ॥ १७ ॥

सत्यार्जवरतो दान्तः शुचिः शौचसमन्वितः।
श्रद्दधानो जितक्रोधो यथा सिध्यति तच्छृणु ॥ १८ ॥

सत्य और सरलताके सेवनमें संलग्न रहे। इन्द्रियोंका दमन करे, शुद्ध एवं शौचाचारसे सम्पन्न रहे। श्रद्धालु बना रहे और क्रोधको काबूमें रखे। ऐसे श्रोताको जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त होती है, वह बताता हूँ; सुनो ॥ १८ ॥

शुचिः शीलान्विताचारः शुक्लवासा जितेन्द्रियः।
संस्कृतः सर्वशास्त्रज्ञः श्रद्दधानोऽनसूयकः ॥ १९ ॥
रूपवान् सुभगो दान्तः सत्यवादी जितेन्द्रियः।
दानमानगृहीतश्च कार्यो भवति वाचकः ॥ २० ॥

जो बाहर-भीतरसे पवित्र, शीलवान्, सदाचारी, शुद्ध वस्त्र धारण करनेवाला, जितेन्द्रिय, संस्कारसम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका तत्त्वज्ञ, श्रद्धालु, दोषदृष्टिसे रहित, रूपवान्, सौभाग्यशाली, मनको वशमें रखनेवाला, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हो, ऐसे विद्वान् पुरुषको दान और मानसे अनुगृहीत करके वाचक बनाना चाहिये ॥ १९-२० ॥

अविलम्बमनायस्तमद्रुतं धीरमूर्जितम्।
असंसक्ताक्षरपदं स्वरभावसमन्वितम् ॥ २१ ॥

कथावाचकको न तो बहुत रुक-रुककर कथा बाँचनी चाहिये और न बहुत जल्दी ही। आरामके साथ धीरगतिसे अक्षरों और पदोंका स्पष्ट उच्चारण करते हुए उच्चस्वरसे कथा बाँचनी चाहिये। मीठे स्वरसे भावार्थ समझाकर कथा कहनी चाहिये ॥ २१ ॥

त्रिषष्टिवर्णसंयुक्तमष्टस्थानसमीरितम्।
वाचयेद् वाचकः स्वस्थः स्वासीनः सुसमाहितः॥ २२ ॥

तिरसठ अक्षरोंका उनके आठों स्थानोंसे ठीक-ठीक उच्चारण करे। कथा सुनाते समय वाचकके लिये स्वस्थ और एकाग्रचित्त होना आवश्यक है। उसके लिये आसन ऐसा होना चाहिये, जिसपर वह सुखपूर्वक बैठ सके ॥ २२ ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ २३ ॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओंका संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यासको नमस्कार करके जय (महाभारत) का पाठ करना चाहिये ॥ २३ ॥

ईदृशाद् वाचकाद् राजञ्श्रुत्वा भारत भारतम्।
नियमस्थः शुचिः श्रोता शृण्वन् स फलमश्नुते ॥ २४ ॥

राजन्! भरतनन्दन! नियमपरायण पवित्र श्रोता ऐसे वाचकसे महाभारतकी कथा सुनकर श्रवणका पूरा-पूरा फल पाता है ॥ २४ ॥

पारणं प्रथमं प्राप्य द्विजान् कामैश्च तर्पयन्।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं वै लभते नरः ॥ २५ ॥
अप्सरोगणसंकीर्णं विमानं लभते महत्।
प्रहृष्टः स तु देवैश्च दिवं याति समाहितः ॥ २६ ॥

जो मनुष्य प्रथम पारणके समय ब्राह्मणोंको अभीष्ट वस्तुएँ देकर तृप्त करता है, वह अग्निष्टोम यज्ञका फल पाता है। उसे अप्सराओंसे भरा हुआ विमान प्राप्त होता है और वह प्रसन्नतापूर्वक एकाग्रचित्त हो देवताओंके साथ स्वर्गलोकमें जाता है ॥ २५-२६ ॥

द्वितीयं पारणं प्राप्य सोऽतिरात्रफलं लभेत्।
सर्वरत्नमयं दिव्यं विमानमधिरोहति ॥ २७ ॥

जो मनुष्य दूसरा पारण पूरा करता है, उसे अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है। वह सर्वरत्नमय दिव्य विमानपर आरूढ़ होता है ॥ २७ ॥

दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यगन्धविभूषितः।
दिव्याङ्गदधरो नित्यं देवलोके महीयते ॥ २८ ॥

वह दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण करता, दिव्य चन्दनसे चर्चित एवं दिव्य सुगन्धसे वासित होता और दिव्य अङ्गद धारण करके सदा देवलोकमें सम्मानित होता है ॥ २८ ॥

तृतीयं पारणं प्राप्य द्वादशाहफलं लभेत्।

वसत्यमरसंकाशो वर्षाण्युतशो दिवि ॥ २९ ॥

तीसरा पारण पूरा करनेपर मनुष्य द्वादशाहयज्ञका फल पाता है और देवताओंके तुल्य तेजस्वी होकर हजारों वर्षोंतक स्वर्गलोकमें निवास करता है ॥ २९ ॥

चतुर्थे वाजपेयस्य पञ्चमे द्विगुणं फलम् ।
उदितादित्यसंकाशं ज्वलन्तमनलोपमम् ॥ ३० ॥
विमानं विबुधैः सार्धमारुह्य दिवि गच्छति ।
वर्षायुतानि भवने शक्रस्य दिवि मोदते ॥ ३१ ॥

चौथे पारणमें वाजपेय-यज्ञका और पाँचवेंमें उससे दूना फल प्राप्त होता है । वह पुरुष उदयकालके सूर्य तथा प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ़ हो देवताओंके साथ स्वर्गलोकमें जाता है और वहाँ इन्द्रभवनमें दस हजार वर्षोंतक आनन्द भोगता है ॥ ३०-३१ ॥

षष्ठे द्विगुणमस्तीति सप्तमे त्रिगुणं फलम् ।
कैलासशिखराकारं वैदूर्यमणिवेदिकम् ॥ ३२ ॥
परिक्षिप्तं च बहुधा मणिविद्रुमभूषितम् ।
विमानं समधिष्ठाय कामगं साप्सरोगणम् ॥ ३३ ॥
सर्वाँल्लोकान् विचरते द्वितीय इव भास्करः ।

छठे पारणमें इससे दूना और सातवेंमें तिगुना फल मिलता है । वह मनुष्य अप्सराओंसे भरे हुए और इच्छानुसार चलनेवाले, कैलासशिखरकी भाँति उज्ज्वल, वैदूर्यमणिकी वेदियोंसे विभूषित, नाना प्रकारसे सुसज्जित तथा मणियों और मूँगोंसे अलंकृत विमानपर बैठकर दूसरे सूर्यकी भाँति सम्पूर्ण लोकोंमें विचरता है ॥ ३२-३३½ ॥

अष्टमे राजसूयस्य पारणे लभते फलम् ॥ ३४ ॥
चन्द्रोदयनिभं रम्यं विमानमधिरोहति ।
चन्द्ररश्मिप्रतीकाशैर्हयैर्युक्तं मनोजवैः ॥ ३५ ॥

आठवें पारणमें मनुष्य राजसूय यज्ञका फल पाता है । वह मनके समान वेगशाली और चन्द्रमाकी किरणोंके समान रंगवाले श्वेत घोड़ोंसे जुते हुए चन्द्रोदयतुल्य रमणीय विमानपर आरूढ़ होता है ॥ ३४-३५ ॥

सेव्यमानो वरस्त्रीणां चन्द्रात् कान्ततरैर्मुखैः ।
मेखलानां निनादेन नूपुराणां च निःस्वनैः ॥ ३६ ॥
अङ्के परमनारीणां सुखसुप्तो विबुध्यते ।

चन्द्रमासे भी अधिक कमनीय मुखोंद्वारा सुशोभित होनेवाली सुन्दरी दिव्याङ्गनाएँ उसकी सेवामें रहती हैं तथा सुरसुन्दरियोंके अङ्कमें सुखसे सोया हुआ वह पुरुष उन्हींकी मेखलाओंके खन-खन शब्दों और नूपुरोंकी मधुर झनकारोंसे जगाया जाता है ॥ ३६½ ॥

नवमे क्रतुराजस्य वाजिमेधस्य भारत ॥ ३७ ॥
काञ्चनस्तम्भनिर्यूहवैदूर्यकृतवेदिकम् ।
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्गवाक्षैः सर्वतो वृतम् ॥ ३८ ॥
सेवितं चाप्सरःसङ्घैर्गन्धर्वैर्दिविचारिभिः ।
विमानं समधिष्ठाय श्रिया परमया ज्वलन् ॥ ३९ ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरो दिव्यचन्दनरूषितः ।
मोदते दैवतैः सार्धं दिवि देव इवापरः ॥ ४० ॥

भारत ! नवाँ पारण पूर्ण होनेपर श्रोताको यज्ञोंके राजा अश्वमेधका फल प्राप्त होता है । वह सोनेके खंभों और छज्जोंसे सुशोभित, वैदूर्यमणिकी बनी हुई वेदियोंसे विभूषित, चारों ओरसे जाम्बूनदमय दिव्य वातायनोंसे अलंकृत, स्वर्गवासी गन्धर्वों एवं अप्सराओंसे सेवित दिव्य विमानपर आरूढ़ हो अपनी उत्कृष्ट शोभासे प्रकाशित होता हुआ स्वर्गमें दूसरे देवताकी भाँति देवताओंके साथ आनन्द भोगता है । उसके अङ्गोंमें दिव्य माला एवं दिव्य वस्त्र शोभा पाते हैं तथा वह दिव्य चन्दनसे चर्चित होता है ॥ ३७–४० ॥

दशमं पारणं प्राप्य द्विजातीनभिवन्द्य च ।
किंकिणीजालनिर्घोषं पताकाध्वजशोभितम् ॥ ४१ ॥
रत्नवेदिकसम्बाधं वैदूर्यमणितोरणम् ।
हेमजालपरिक्षिप्तं प्रवालवलभीमुखम् ॥ ४२ ॥
गन्धर्वैर्गीतकुशलैरप्सरोभिश्च शोभितम् ।
विमानं सुकृतावासं सुखेनैवोपपद्यते ॥ ४३ ॥

दसवाँ पारण पूरा होनेपर ब्राह्मणोंको प्रणाम करनेके पश्चात् श्रोताको पुण्यनिकेतन विमान अनायास ही प्राप्त हो जाता है । उसमें छोटी-छोटी घंटियोंसे युक्त झालरें लगी होती हैं और उनसे मधुर ध्वनि फैलती रहती है । बहुत-सी ध्वजा-पताकाएँ उस विमानकी शोभा बढ़ाती हैं । उसमें जगह-जगह रत्नमय चबूतरे बने होते हैं । वैदूर्यमणिका बना हुआ फाटक लगा होता है । सब ओरसे सोनेकी जालीद्वारा वह विमान घिरा होता है । उसके छज्जोंके नीचे मूँगे जड़े होते हैं । संगीत-कुशल गन्धर्वों और अप्सराओंसे उस विमानकी शोभा और बढ़ जाती है ॥ ४१–४३ ॥

मुकुटेनाग्निवर्णेन जाम्बूनदविभूषिणा ।
दिव्यचन्दनदिग्धाङ्गो दिव्यमाल्यविभूषितः ॥ ४४ ॥

दिव्याँल्लोकान् विचरति दिव्यैर्भोगैः समन्वितः।
विबुधानां प्रसादेन श्रिया परमया युतः ॥४५॥

उसपर बैठा हुआ पुण्यात्मा पुरुष अग्नितुल्य तेजस्वी मुकुटसे अलंकृत तथा जाम्बूनदके आभूषणोंसे विभूषित होता है। उसका शरीर दिव्य चन्दनसे चर्चित तथा दिव्य मालाओंसे विभूषित होता है। दिव्य भोगोंसे सम्पन्न हो वह दिव्य लोकोंमें विचरता है और देवताओंकी कृपासे उत्कृष्ट शोभा-सम्पत्ति प्राप्त कर लेता है ॥ ४४-४५ ॥

अथ वर्षगणानेवं स्वर्गलोके महीयते।
ततो गन्धर्वसहितः सहस्राण्येकविंशतिम् ॥ ४६ ॥
पुरन्दरपुरे रम्ये शक्रेण सह मोदते।

इस प्रकार बहुत वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें सम्मानपूर्वक रहता है। तदनन्तर इक्कीस हजार वर्षोंतक गन्धर्वोंके साथ इन्द्रकी रमणीय नगरीमें रहकर देवेन्द्रके साथ ही वहाँका सुख भोगता है ॥ ४६½ ॥

दिव्ययानविमानेषु लोकेषु विविधेषु च ॥ ४७ ॥
दिव्यनारीगणाकीर्णो निवसत्यमरो यथा।

दिव्य रथों और विमानोंपर आरूढ़ हो नाना प्रकारके लोकोंमें विचरता और दिव्य नारियोंसे घिरा हुआ देवताकी भाँति वहाँ निवास करता है ॥ ४७½ ॥

ततः सूर्यस्य भवने चन्द्रस्य भवने तथा ॥ ४८ ॥
शिवस्य भवने राजन् विष्णोर्याति सलोकताम्।

राजन्! इसके बाद वह सूर्य, चन्द्रमा, शिव तथा भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है ॥ ४८½ ॥

एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा ॥ ४९ ॥
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम।

महाराज! ठीक ऐसी ही बात है। इस विषयमें कोई अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। मेरे गुरुका कथन है कि महाभारतकी इस महिमा और फलपर श्रद्धा रखनी चाहिये ॥ ४९½ ॥

वाचकस्य तु दातव्यं मनसा यद् यदिच्छति ॥ ५० ॥
हस्त्यश्वरथयानानि वाहनानि विशेषतः।

वाचकको उसके मनमें जिस-जिस वस्तुकी इच्छा हो, वह सब देनी चाहिये। हाथी, घोड़े, रथ, पालकी तथा दूसरे-दूसरे वाहन विशेषरूपसे देने चाहिये ॥ ५०½ ॥

कटके कुण्डले चैव ब्रह्मसूत्रं तथा परम् ॥ ५१ ॥
वस्त्रं चैव विचित्रं च गन्धं चैव विशेषतः।
देववत् पूजयेत् तं तु विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥

कड़े, कुण्डल, यज्ञोपवीत, विचित्र वस्त्र और विशेषतः गन्ध अर्पित करके वाचककी देवताके समान पूजा करनी चाहिये। ऐसा करनेवाला श्रोता भगवान् विष्णुके लोकमें जाता है ॥ ५१-५२ ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि यानि देयानि भारते।
वाच्यमाने तु विप्रेभ्यो राजन् पर्वणि पर्वणि ॥ ५३ ॥
जातिं देशं च सत्यं च माहात्म्यं भरतर्षभ।
धर्मं वृत्तिं च विज्ञाय क्षत्रियाणां नराधिप ॥ ५४ ॥

राजन्! भरतश्रेष्ठ! महाभारतकी कथा प्रारम्भ हो जानेपर प्रत्येक पर्वमें क्षत्रियोंकी जाति, देश, सत्यता, माहात्म्य, धर्म और वृत्तिको जानकर ब्राह्मणोंको जो-जो वस्तुएँ अर्पित करनी चाहिये, अब उनका वर्णन करूँगा ॥ ५३-५४ ॥

स्वस्ति वाच्य द्विजानादौ ततः कार्ये प्रवर्तिते।
समाप्ते पर्वणि ततः स्वशक्त्या पूजयेद् द्विजान्॥ ५५ ॥

पहले ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर कथावाचनका कार्य प्रारम्भ कराये। फिर पर्व समाप्त होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार उन ब्राह्मणोंकी पूजा करे ॥ ५५ ॥

आदौ तु वाचकं चैव वस्त्रगन्धसमन्वितम्।
विधिवद् भोजयेद् राजन् मधु पायसमुत्तमम् ॥ ५६ ॥

राजन्! आदिपर्वकी कथाके समय वाचकको नूतन वस्त्र पहनाकर चन्दन आदिसे उसकी पूजा करे और विधिपूर्वक उसे मीठी एवं उत्तम खीर भोजन कराये ॥५६॥

ततो मूलफलप्रायं पायसं मधुसर्पिषा।
आस्तीके भोजयेद् राजन् दद्याच्चैव गुडौदनम् ॥५७॥

राजन्! तत्पश्चात् आस्तीकपर्वकी कथाके समय ब्राह्मणोंको मधु और घीसे युक्त खीर भोजन कराये। उस भोजनमें फल-मूलकी अधिकता होनी चाहिये। फिर गुड़ और भात दान करे ॥ ५७ ॥

अपूपैश्चैव पूपैश्च मोदकैश्च समन्वितम्।
सभापर्वणि राजेन्द्र हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥ ५८॥

राजेन्द्र! सभापर्व आरम्भ होनेपर ब्राह्मणोंको पूओं, कचौड़ियों और मिठाइयोंके साथ खीर भोजन कराये॥ ५८॥

आरण्यके मूलफलैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान्।
अरणीपर्व चासाद्य जलकुम्भान् प्रदापयेत्॥ ५९॥

वनपर्वमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको फल-मूलोंद्वारा तृप्त करे। अरणीपर्वमें पहुँचकर जलसे भरे हुए घड़ोंका दान करे॥५९॥

तर्पणानि च मुख्यानि वन्यमूलफलानि च।
सर्वकामगुणोपेतं विप्रेभ्योऽन्नं प्रदापयेत्॥ ६०॥

इतना ही नहीं, जिनको खानेसे तृप्ति हो सके, ऐसे उत्तम-उत्तम जंगली मूल-फल और सभी अभीष्ट गुणोंसे सम्पन्न अन्न ब्राह्मणोंको दान करे॥ ६०॥

विराटपर्वणि तथा वासांसि विविधानि च।
उद्योगे भरतश्रेष्ठ सर्वकामगुणान्वितम्॥ ६१॥
भोजनं भोजयेद् विप्रान् गन्धमाल्यैरलंकृतान्।

भरतश्रेष्ठ! विराटपर्वमें भाँति-भाँतिके वस्त्र दान करे तथा उद्योगपर्वमें ब्राह्मणोंको चन्दन और फूलोंकी मालासे अलंकृत करके उन्हें सर्वगुणसम्पन्न अन्न भोजन कराये॥६१½॥

भीष्मपर्वणि राजेन्द्र दत्त्वा यानमनुत्तमम्॥ ६२॥
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम्।

राजेन्द्र! भीष्मपर्वमें उत्तम सवारी देकर अच्छी तरह छौंक-बघारकर तैयार किया हुआ सभी उत्तम गुणोंसे युक्त भोजन दान करे॥ ६२½॥

द्रोणपर्वणि विप्रेभ्यो भोजनं परमार्चितम्॥ ६३॥
शराश्च देया राजेन्द्र चापान्यसिवरास्तथा।

राजेन्द्र! द्रोणपर्वमें ब्राह्मणोंको परम उत्तम भोजन कराये और उन्हें धनुष, बाण तथा उत्तम खड्ग प्रदान करे॥ ६३½॥

कर्णपर्वण्यपि तथा भोजनं सार्वकामिकम्॥ ६४॥
विप्रेभ्यः संस्कृतं सम्यग् दद्यात् संयतमानसः।

कर्णपर्वमें भी ब्राह्मणोंको अच्छे ढंगसे तैयार किया हुआ सबकी रुचिके अनुकूल उत्तम भोजन दे और अपने मनको वशमें रक्खे॥ ६४½॥

शल्यपर्वणि राजेन्द्र मोदकैः सगुडौदनैः॥ ६५॥
अपूपैस्तर्पणैश्चैव सर्वमन्नं प्रदापयेत्।

राजेन्द्र! शल्यपर्वमें मिठाई, गुड़, भात, पूआ तथा तृप्तिकारक फल आदिके साथ सब प्रकारके उत्तम अन्न दान करे॥ ६५½॥

गदापर्वण्यपि तथा मुद्गमिश्रं प्रदापयेत्॥ ६६॥
स्त्रीपर्वणि तथा रत्नैस्तर्पयेत्तु द्विजोत्तमान्।

गदापर्वमें भी मूँग मिलाये हुए चावलका दान करे। स्त्रीपर्वमें रत्नोंद्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त करे॥ ६६½॥

घृतौदनं पुरस्ताच्च ऐषीके दापयेत् पुनः॥ ६७॥
ततः सर्वगुणोपेतमन्नं दद्यात् सुसंस्कृतम्।

ऐषीकपर्वमें पहले घी मिलाया हुआ भात जिमाये। फिर अच्छी तरह संस्कार किये हुए सर्वगुणसम्पन्न अन्नका दान करे॥ ६७½॥

शान्तिपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥६८॥
आश्वमेधिकमासाद्य भोजनं सार्वकामिकम्।

शान्तिपर्वमें भी ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन कराये। आश्वमेधिकपर्वमें पहुँचनेपर सबकी रुचिके अनुकूल उत्तम भोजन दे॥ ६८½॥

तथाऽऽश्रमनिवासे तु हविष्यं भोजयेद् द्विजान्॥ ६९॥
मौसले सार्वगुणिकं गन्धमाल्यानुलेपनम्।

आश्रमवासिकपर्वमें ब्राह्मणोंको हविष्य भोजन कराये। मौसलपर्वमें सर्वगुणसम्पन्न अन्न, चन्दन, माला और अनुलेपनका दान करे॥ ६९½॥

महाप्रास्थानिके तद्वत् सर्वकामगुणान्वितम्॥ ७०॥
स्वर्गपर्वण्यपि तथा हविष्यं भोजयेद् द्विजान्।

इसी प्रकार महाप्रस्थानिकपर्वमें भी समस्त वाञ्छनीय गुणोंसे युक्त अन्न आदिका दान करे। स्वर्गारोहणपर्वमें भी ब्राह्मणोंको हविष्य खिलाये॥ ७०½॥

हरिवंशसमाप्तौ तु सहस्रं भोजयेद् द्विजान्॥ ७१॥
गामेकां निष्कसंयुक्तां ब्राह्मणाय निवेदयेत्।

हरिवंशकी समाप्ति होनेपर एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा स्वर्णमुद्रासहित एक गौ ब्राह्मणको दान दे॥ ७१½॥

तदर्धेनापि दातव्या दरिद्रेणापि पार्थिव॥ ७२॥
प्रतिपर्वसमाप्तौ तु पुस्तकं वै विचक्षणः।

सुवर्णेन च संयुक्तं वाचकाय निवेदयेत् ॥ ७३॥

पृथ्वीनाथ ! यदि श्रोता दरिद्र हो तो उसे भी आधी दक्षिणाके साथ गोदान अवश्य करना चाहिये । प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर विद्वान् पुरुष सुवर्णसहित पुस्तक वाचकको समर्पित करे ॥ ७२-७३ ॥

हरिवंशे पर्वणि च पायसं तत्र भोजयेत् ।
पारणे पारणे राजन् यथावद् भरतर्षभ ॥ ७४॥

राजन् ! भरतश्रेष्ठ ! हरिवंशपर्वमें भी प्रत्येक पारणके समय ब्राह्मणोंको यथावत् रूपसे खीर भोजन कराये ॥ ७४॥

समाप्य सर्वाः प्रयतः संहिताः शास्त्रकोविदः ।
शुभे देशे निवेश्याथ क्षौमवस्त्राभिसंवृताः ॥ ७५ ॥
शुक्लाम्बरधरः स्रग्वी शुचिर्भूत्वा स्वलंकृतः ।
अर्चयेत यथान्यायं गन्धमाल्यैः पृथक् पृथक् ॥ ७६ ॥
संहितापुस्तकान् राजन् प्रयतः सुसमाहितः ।
भक्ष्यैर्माल्यैश्च पेयैश्च कामैश्च विविधैः शुभैः ॥ ७७ ॥

इस प्रकार एकाग्रचित्त हो सब पर्वोंकी संहिताओंको समाप्त करके शास्त्रवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह उन्हें रेशमी वस्त्रोंमें लपेटकर किसी उत्तम स्थानमें रक्खे और स्वयं स्नान आदिसे पवित्र हो श्वेत वस्त्र, फूलकी माला तथा आभूषण धारण करके चन्दन-माला आदि उपचारोंसे उन संहिता-पुस्तकोंकी पृथक्-पृथक् विधिवत् पूजा करे । पूजाके समय चित्तको एकाग्र एवं शुद्ध रक्खे । भाँति-भाँतिके उत्तम भक्ष्य, भोजन, पेय, माल्य तथा अन्य कमनीय वस्तुएँ भेंटके रूपमें चढ़ाये ॥ ७५–७७ ॥

हिरण्यं च सुवर्णं च दक्षिणामथ दापयेत् ।
सर्वत्र त्रिपलं स्वर्णं दातव्यं प्रयतात्मना ॥ ७८ ॥

इसके बाद हिरण्य एवं सुवर्णकी दक्षिणा दे । मनको वशमें रखकर सभी पुस्तकोंपर तीन-तीन पल सोना चढ़ाना चाहिये ॥ ७८ ॥

तदर्धं पादशेषं वा वित्तशाठ्यविवर्जितम् ।
यद् यदेवात्मनोऽभीष्टं तत् तद् देयं द्विजातये ॥ ७९॥

इतना न हो सके तो सबपर डेढ़-डेढ़ पल सोना चढ़ाये और यह भी सम्भव न हो तो पौन-पौन पल चढ़ाये; परंतु धन रहते हुए कंजूसी नहीं करनी चाहिये । जो-जो वस्तु अपनेको प्रिय लगती हो, वही-वही ब्राह्मणको दानमें देनी चाहिये ॥ ७९ ॥

सर्वथा तोषयेद् भक्त्या वाचकं गुरुमात्मनः ।
देवताः कीर्तयेत् सर्वा नरनारायणौ तथा ॥ ८० ॥

कथावाचक अपना गुरु होता है, अतः उसके प्रति भक्तिभाव रखते हुए उसे सर्वथा संतुष्ट करना चाहिये । उस समय सम्पूर्ण देवताओं तथा भगवान् नर-नारायणका कीर्तन करना चाहिये ॥ ८० ॥

ततो गन्धैश्च माल्यैश्च स्वलंकृत्य द्विजोत्तमान् ।
तर्पयेद् विविधैः कामैर्दानैश्चोच्चावचैस्तथा ॥ ८१ ॥

तदनन्तर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको चन्दन और माला आदिसे विभूषित करके उन्हें नाना प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुएँ और भाँति-भाँतिके छोटे-बड़े आवश्यक पदार्थ देकर संतुष्ट करे ॥ ८१ ॥

अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ।
प्राप्नुयाच्च क्रतुफलं तथा पर्वणि पर्वणि ॥ ८२ ॥

ऐसा करनेसे मनुष्यको अतिरात्र यज्ञका फल मिलता है तथा प्रत्येक पर्वकी समाप्तिपर ब्राह्मणकी पूजा करनेसे श्रौत यज्ञका फल प्राप्त होता है ॥ ८२ ॥

वाचको भरतश्रेष्ठ व्यक्ताक्षरपदस्वरः ।
भविष्यं श्रावयेद् विद्वान् भारतं भरतर्षभ ॥ ८३ ॥

भरतश्रेष्ठ ! कथावाचकको विद्वान् होना चाहिये और प्रत्येक अक्षर, पद तथा स्वरका सुस्पष्ट उच्चारण करते हुए उसे महाभारत या हरिवंशके भविष्यपर्वकी कथा सुनानी चाहिये ॥ ८३ ॥

भुक्तवत्सु द्विजेन्द्रेषु यथावत् सम्प्रदापयेत् ।
वाचकं भरतश्रेष्ठ भोजयित्वा स्वलंकृतम् ॥ ८४ ॥

भरतभूषण ! सम्पूर्ण कथाकी समाप्ति होनेके बाद श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके भोजन कर लेनेपर उन्हें यथोचित दान देना चाहिये । फिर वाचकको भी वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके उत्तम अन्न भोजन कराना चाहिये । इसके बाद उसे दान-मानसे संतुष्ट करना उचित है ॥ ८४ ॥

वाचके परितुष्टे तु शुभा प्रीतिरनुत्तमा ।
ब्राह्मणेषु तु तुष्टेषु प्रसन्नाः सर्वदेवताः ॥ ८५ ॥

कथावाचकके संतुष्ट होनेपर ही परम उत्तम एवं मङ्गलमयी प्रीति प्राप्त होती है । ब्राह्मणोंके संतुष्ट होनेपर श्रोताके ऊपर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं ॥ ८५ ॥

ततो हि वरणं कार्यं द्विजानां भरतर्षभ ।

सर्वकामैर्यथान्यायं साधुभिश्च पृथग्विधैः ॥ ८६ ॥

इसलिये भरतश्रेष्ठ ! साधुस्वभावके श्रोताओंको चाहिये कि वे न्यायपूर्वक ब्राह्मणोंका वरण करें तथा उनकी विभिन्न प्रकारकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण करते हुए उनका यथोचित पूजन करें ॥ ८६ ॥

इत्येष विधिरुद्दिष्टो मया ते द्विपदां वर।
श्रद्दधानेन वै भाव्यं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥८७॥

मनुष्योंमें श्रेष्ठ नरेश्वर ! तुम मुझसे जो कुछ पूछ रहे थे, उसके अनुसार यह मैंने महाभारतके सुनने तथा उसका पारायण करनेकी विधि बतलायी है । तुम्हें इसपर श्रद्धा करनी चाहिये ॥ ८७ ॥

भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता ॥ ८८ ॥

राजन् ! नृपश्रेष्ठ ! अपने परम कल्याणकी इच्छा रखनेवाले श्रोताको महाभारतको सुनने तथा इसका पारायण करनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये ॥ ८८ ॥

भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः ॥ ८९ ॥

प्रतिदिन महाभारत सुने । नित्यप्रति महाभारतका पाठ करे । जिसके घरमें महाभारत ग्रन्थ मौजूद है, विजय उसके हाथमें है ॥ ८९ ॥

भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम् ॥ ९० ॥

महाभारत परम पवित्र ग्रन्थ है । इसमें नाना प्रकारकी कथाएँ हैं । देवता भी महाभारतका सेवन करते हैं। महाभारत परमपदस्वरूप है ॥ ९० ॥

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद् ब्रवीमि तत् ॥ ९१॥

भरतश्रेष्ठ ! महाभारत सम्पूर्ण शास्त्रोंमें उत्तम है। महाभारतसे मोक्ष प्राप्त होता है। यह मैं तुमसे सच्ची बात बता रहा हूँ ॥ ९१ ॥

महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम्।
ब्राह्मणान् केशवं चैव कीर्तयन् नावसीदति ॥९२॥

महाभारत नामक इतिहास, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण और भगवान् श्रीकृष्णका कीर्तन करनेवाला मनुष्य कभी विपत्तिमें नहीं पड़ता ॥ ९२ ॥

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते ॥९३॥

भरतश्रेष्ठ ! वेद, रामायण तथा पवित्र महाभारतके आदि, मध्य एवं अन्तमें सर्वत्र भगवान् श्रीहरिका ही गान किया जाता है ॥ ९३ ॥

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥ ९४ ॥

जहाँ भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाओं तथा सनातन श्रुतियोंका समावेश है, उस महाभारतका इस जगत्में परम-पदकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको अवश्य श्रवण करना चाहिये ॥ ९४ ॥

एतत् पवित्रं परममेतद् धर्मनिदर्शनम्।
एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥ ९५ ॥

यह महाभारत परम पवित्र है । यह धर्मके स्वरूपका साक्षात्कार करानेवाला है तथा यह समस्त उत्तम गुणोंसे सम्पन्न है । अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको इसका श्रवण अवश्य करना चाहिये ॥ ९५ ॥

कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम्।
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ॥ ९६ ॥

महाभारतके श्रवणसे शरीर, वाणी और मनके द्वारा संचित किये हुए सारे पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार ॥ ९६ ॥

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं भवेत्।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः ॥ ९७ ॥

अठारह पुराणोंके सुननेसे जो फल होता है, वह सारा फल वैष्णव पुरुषको अकेले महाभारतके श्रवणसे मिल जाता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ९७ ॥

स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः ॥ ९८ ॥

स्त्रियाँ हों या पुरुष, सभी इसके श्रवणसे भगवान् विष्णुके धामको चले जाते हैं । पुत्रकी कामना रखनेवाली स्त्रियोंको भगवान् विष्णुके यशस्वरूप इस महाभारतका श्रवण अवश्य करना चाहिये ॥ ९८ ॥

दक्षिणा चात्र देया वै निष्कपञ्चसुवर्णकम्।
वाचकाय यथाशक्त्या यथोक्तं फलमिच्छता ॥ ९९ ॥

शास्त्रोक्त फलकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको चाहिये कि

वह महाभारत-श्रवणके पश्चात् वाचकको यथाशक्ति सोनेके पाँच सिक्के दक्षिणाके रूपमें दान करे ॥ ९९ ॥

स्वर्णशृङ्गीं च कपिलां सवत्सां वस्त्रसंवृताम् ।
वाचकाय च दद्याद्धि आत्मनः श्रेय इच्छता ॥१००॥

अपना कल्याण चाहनेवाले पुरुषको उचित है कि वह कपिला गौके सींगोंमें सोना मढ़ाकर उसे वस्त्रसे आच्छादित करके बछड़ेसहित वाचकको दान दे ॥ १०० ॥

अलङ्कारं प्रदद्याच्च पाण्योर्वै भरतर्षभ ।
कर्णस्याभरणं दद्याद् धनं चैव विशेषतः ॥१०१॥

भरतश्रेष्ठ ! इसके सिवा कथावाचकके लिये दोनों हाथोंके कड़े, कानोंके कुण्डल और विशेषतः धन प्रदान करे ॥१०१॥

भूमिदानं समादद्याद् वाचकाय नराधिप ।
भूमिदानसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥१०२॥

नरेश्वर ! वाचकके लिये भूमिदान तो अवश्य ही करना चाहिये; क्योंकि भूमिदानके समान दूसरा कोई दान न हुआ है, न होगा ॥ १०२ ॥

शृणोति श्रावयेद् वापि सततं चैव यो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥ १०३॥

जो मनुष्य सदा महाभारतको सुनता अथवा सुनाता रहता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके धामको जाता है ॥ १०३ ॥

पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान् ।
आत्मानंससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥१०४॥

भरतश्रेष्ठ ! वह पुरुष अपनी ग्यारह पीढ़ीमें समस्त पितरोंका, अपना तथा अपनी स्त्री और पुत्रका भी उद्धार कर देता है ॥ १०४ ॥

दशांशश्चैव होमोऽपि कर्तव्योऽत्र नराधिप ।
इदं मया तवाग्रे च प्रोक्तं सर्वं नरर्षभ ॥१०५॥

नरेश्वर ! महाभारत सुननेके बाद उसके लिये दशांश होम भी करना आवश्यक है । नरश्रेष्ठ ! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष इन सब बातोंका विस्तारके साथ वर्णन कर दिया ॥ १०५ ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां हरिवंशोक्तभारतश्रवणविधावध्यायः समाप्तः ॥

इस प्रकार व्यासनिर्मित श्रीमहाभारत शतसाहस्री संहितामें हरिवंशोक्त भारतश्रवणविधिविषयक अध्याय पूरा हुआ ॥



महाभारत-माहात्म्य

पाराशर्यवचःसरोजममलं गीतार्थगन्धोत्कटं
नानाख्यानककेसरं हरिकथासंबोधनाबोधितम्।
लोके सज्जनषट्पदैरहरहः पेपीयमानं मुदा ॥
भूयाद् भारतपङ्कजं कलिमलप्रध्वंसि नः श्रेयसे ॥

पराशरके पुत्र महर्षि व्यासकी वाणीरूपी सरोवरमें उदित यह महाभारतरूपी अमल कमल, जो गीतार्थरूपी तीव्र सुगन्धसे युक्त, नानाप्रकारके आख्यानरूपी केसरसे सम्पन्न तथा हरिकथारूपी सूर्यतापसे प्रफुल्लित है, सज्जनरूपी भ्रमर इस लोकमें जिसके रसका निरन्तर प्रमुदित होकर पान किया करते हैं और जो कलिकालके पापरूपी मलका नाश करनेवाला है, सदा हमारा कल्याण करनेवाला हो ॥

यत्र विष्णुकथा दिव्याः श्रुतयश्च सनातनाः ।
तच्छ्रोतव्यं मनुष्येण परं पदमिहेच्छता ॥
श्रूयतां सिंहनादोऽयमृषेस्तस्य महात्मनः ।
अष्टादशपुराणानां कर्तुर्वेदमहोदधेः ॥

जिसमें भगवान् विष्णुकी दिव्य कथाओंका वर्णन है और जिसमें कल्याणमयी श्रुतियोंका सार दिया गया है, इस लोकमें परमपदकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको उस महाभारतका श्रवण करना चाहिये । अष्टादश पुराणोंके रचयिता और वेद (-ज्ञान) के महान् समुद्र महात्मा श्रीव्यासदेवका यह सिंहनाद है कि 'तुम नित्य महाभारतका श्रवण करो ॥'

धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम् ।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिना ॥
भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ ।
सम्प्रत्याचक्षते चेदं तथा श्रोष्यन्ति चापरे ॥

अपरिमितबुद्धि भगवान् व्यासदेवके द्वारा कथित यह महाभारत पवित्र धर्मशास्त्र है, श्रेष्ठ अर्थशास्त्र है और सर्वोत्तम मोक्षशास्त्र भी है । हे भरतश्रेष्ठ ! महाभारत समस्त शास्त्रोंका शिरोमणि है, इसीसे सम्प्रति विद्वान् लोग इसका पठन-श्रवण करते हैं और आगे भी करेंगे ॥

योऽधीते भारतं पुण्यं ब्राह्मणो नियतव्रतः ।
चतुरो वार्षिकान् मासान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
कुरूणां प्रथितं वंशं कीर्तयन् सततं शुचिः ।
वंशमाप्नोति विपुलं लोके पूज्यतमो भवेत् ॥

जो ब्राह्मण नियमित व्रतका पालन करता हुआ वर्षाऋतुके चार महीनोंमें पवित्र भारतका पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है । जो पुरुष शुद्ध होकर कुरुके प्रसिद्ध वंशका सदा कीर्तन करता है, उसके वंशका विपुल विस्तार होता है और लोकमें वह पूज्यतम बन जाता है ॥

अनागतश्च मोक्षश्च कृष्णद्वैपायनः प्रभुः ।
संदर्भं भारतस्यास्य कृतवान् धर्मकाम्यया ॥
धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् ॥

दीर्घदृष्टि तथा मोक्षरूप भगवान् श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासने केवल धर्मकी कामनासे ही इस महाभारतको रचा है । हे भरतर्षभ ! धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके सम्बन्धमें जो कुछ इस (महाभारत) में कहा गया है, वही अन्य शास्त्रोंमें भी कहा गया है । जो इसमें नहीं कहा गया, वह कहीं नहीं कहा गया है ॥

एतत् पवित्रं परममेतद् धर्मनिदर्शनम् ।
एतत् सर्वगुणोपेतं श्रोतव्यं भूतिमिच्छता ॥
कायिकं वाचिकं चैव मनसा समुपार्जितम् ।
तत् सर्वं नाशमायाति तमः सूर्योदये यथा ॥

यह महाभारत परम पवित्र है, धर्मके लिये प्रमाणरूप है, समस्त गुणोंसे सम्पन्न है; कल्याणकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको इसे अवश्य सुनना चाहिये । क्योंकि, जैसे सूर्यके उदय होनेपर अन्धकारका नाश हो जाता है, वैसे ही इस महाभारतसे तन, वचन और मनसे किये हुए सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥

य इदं मानवो लोके पुण्यार्थे ब्राह्मणाञ्छुचीन् ।
श्रावयेत महापुण्यं तस्य धर्मः सनातनः ॥
महाभारतमाख्यानं क्षितिं गां च सरस्वतीम् ।
ब्राह्मणान् केशवं चैव कीर्तयन्नावसीदति ॥

जो मनुष्य महान् पवित्र इस इतिहासको पुण्यार्थ पवित्र ब्राह्मणोंको श्रवण कराता है, वह सनातन धर्मको प्राप्त होता है । महाभारतके आख्यान, पृथ्वी, गौ, सरस्वती, ब्राह्मण तथा भगवान् केशव—इनका कीर्तन करनेवाला मनुष्य कभी दुखी नहीं होता ॥

शृणोति श्रावयेद् वापि सततं चैव यो नरः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो वैष्णवं पदमाप्नुयात् ॥
पितॄनुद्धरते सर्वानेकादशसमुद्भवान् ।
आत्मानं ससुतं चैव स्त्रियं च भरतर्षभ ॥

जो मनुष्य निरन्तर श्रीमहाभारत सुनता है या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त होकर विष्णु-पदको प्राप्त होता है; इतना ही नहीं, वह पुरुष अपनी ग्यारह पीढ़ीके समस्त पितरोंका तथा पुत्र और पत्नीसहित अपना भी उद्धार करता है ॥

यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरुर्महान् गिरिः ।
उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते ॥
न तां स्वर्गगतिं प्राप्य तुष्टिं प्राप्नोति मानवः ।
यां श्रुत्वैव महापुण्यमितिहासमुपाश्नुते ॥

जैसे समुद्र तथा महापर्वत सुमेरु दोनों रत्ननिधिके नामसे विख्यात हैं, वैसे ही यह महाभारत भी रत्नोंका भंडार कहा गया है । मनुष्यको इस महान् पवित्र इतिहासके पढ़ने-सुननेसे जैसी तुष्टि प्राप्त होती है, वैसी स्वर्गमें जानेसे भी नहीं प्राप्त होती ॥

शरीरेण कृतं पापं वाचा च मनसैव च ।
सर्वं संत्यजति क्षिप्रं य इदं शृणुयान्नरः ॥
भरतानां महज्जन्म शृण्वतामनसूयताम् ।
नास्ति व्याधिभयं तेषां परलोकभयं कुतः ॥

जो मनुष्य इस महाभारतको पढ़ता-सुनता है, वह शरीर, वाणी तथा मनसे किये हुए सब पापोंका निःशेषरूपसे त्याग कर देता है। अर्थात् उसके ये सब पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य दोषबुद्धिका त्याग करके भरतवंशियोंके महान् जीवनकी बातोंको पढ़ते-सुनते हैं, उनको यहाँ व्याधिका भी भय नहीं रहता, फिर परलोकका भय तो रहता ही कहाँसे?

इदं हि वेदैः समितं पवित्रमपि चोत्तमम्।
श्राव्यं श्रुतिसुखं चैव पावनं शीलवर्धनम्॥
य इदं भारतं राजन् वाचकाय प्रयच्छति।
तेन सर्वा मही दत्ता भवेत् सागरमेखला॥

यह महाभारत वेदसदृश (पञ्चम वेद) है, उत्तम है, साथ ही पवित्र भी है, श्रवण करने योग्य है, कानोंको सुख देनेवाला है, पवित्र शीलको बढ़ानेवाला है। अतएव हे राजन्! जो मनुष्य यह भारत ग्रन्थ पढ़नेवालेको दान करता है, उसको समुद्रपर्यन्त सारी पृथ्वीके दानका फल मिलता है।

अष्टादश पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वशः।
वेदाः साङ्गास्तथैकत्र भारतं चैकतः स्थितम्॥
महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते।
निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते॥

अठारहों पुराण, समस्त धर्मशास्त्र, अङ्गोंसहित वेद—इन सबकी बराबरी अकेला महाभारत कर सकता है। क्योंकि यह ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है और रहस्यरूपी असाधारण भारसे युक्त है, इसीसे इसे महाभारत कहा जाता है। जो पुरुष 'महाभारत' शब्दके इस अर्थको जानता है, वह सब पापोंसे छूट जाता है।

जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो मोक्षमिच्छता।
ब्राह्मणेन च राज्ञा च गर्भिण्या चैव योषिता॥
स्वर्गकामो लभेत् स्वर्गं जयकामो लभेज्जयम्।
गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम्॥

'जय' नामक यह इतिहास मोक्षकी इच्छा रखनेवाले, ब्राह्मण, राजा और गर्भवती स्त्रियोंको तो अवश्य सुनना चाहिये। इसके सुननेसे स्वर्गकी इच्छा करनेवालेको स्वर्ग, जयकी इच्छावालेको जय और गर्भवती स्त्रीको पुत्र या बड़े भाग्यवाली कन्या प्राप्त होती है।

यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां सततं शृणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव॥

वेदको जाननेवाले बहुश्रुत ब्राह्मणको कोई सुवर्णसे मँढ़े सींगोंवाली सौ गौदान दे, और दूसरा कोई निरन्तर महाभारतकी कथा सुने तो इन दोनोंको समान फलकी प्राप्ति होती है।

कार्ष्णं वेदमिमं सर्वं शृणुयाद् यः समाहितः।
ब्रह्महत्यादिपापानां कोटिस्तस्य विनश्यति॥
पुत्राः शुश्रूषवः सन्ति प्रेष्याश्च प्रियकारिणः।
भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते॥

व्यासदेवरचित इस (पञ्चम) वेदरूप महाभारतका जो समाहितचित्तसे आद्योपान्त श्रवण करता है, उसके ब्रह्महत्या आदि करोड़ों पाप नष्ट हो जाते हैं। फिर, इस इतिहासको सुननेवाले पुत्र माता-पिताके सेवकोन्मुख, तथा सेवक अपने स्वामीका प्रिय कार्य करनेवाले बन जाते हैं। इसमें महान् भरतवंशियोंकी जीवन-कथाका वर्णन है, इससे भी इसको महाभारत कहते हैं।

देवा राजर्षयो ह्यत्र पुण्या ब्रह्मर्षयस्तथा।
कीर्त्यन्ते धूतपाप्मानः कीर्त्यते केशवस्तथा॥
भगवांश्चापि देवेशो यत्र देवी च कीर्त्यते।
अनेकजननो यत्र कार्तिकेयस्य सम्भवः॥

इस महाभारतमें पवित्र देवताओं, राजर्षियों और पुण्यस्वरूप ब्रह्मर्षियोंका वर्णन है; इसमें भगवान् केशवके चरित्रोंका कीर्तन है, इसमें भगवान् महादेव तथा देवी पार्वतीका वर्णन है। और इसमें अनेक माताओंवाले कार्तिकेयके जन्मका भी वर्णन है।

ब्राह्मणानां गवां चैव माहात्म्यं यत्र कीर्त्यते।
सर्वं श्रुतिसमूहोऽयं श्रोतव्यो धर्मबुद्धिभिः॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो राहुणा चन्द्रमा यथा।
जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा॥

फिर इस इतिहासमें ब्राह्मणों तथा गौओंका माहात्म्य बतलाया गया है। और यह समस्त श्रुतियोंका समूहरूप है। अतः धर्मबुद्धि मनुष्योंको इसे पढ़ना-सुनना चाहिये। विजयकी इच्छा करनेवालोंको यह 'जय' नामक इतिहास अवश्य सुनना चाहिये। इसके सुननेसे मनुष्य सब पापोंसे वैसे ही मुक्त हो जाता है, जैसे राहुके ग्रहणसे चन्द्रमा मुक्त हो जाता है।

अस्मिन्नर्थश्च कामश्च निखिलेनोपदेक्ष्यते।
इतिहासे महापुण्ये बुद्धिश्च परिनैष्ठिकी॥
भारतं शृणुयान्नित्यं भारतं परिकीर्तयेत्।
भारतं भवने यस्य तस्य हस्तगतो जयः॥

इस महान् पवित्र इतिहासमें अर्थ और कामका ऐसा सर्वाङ्गपूर्ण उपदेश है कि जिससे इसे पढ़ने-सुननेवालेकी बुद्धि परमात्मामें परिनिष्ठित हो जाती है। अतएव महाभारतका श्रवण-कीर्तन सदा करना चाहिये। जिसके घर महाभारतका श्रवण-कीर्तन होता है, उसके विजय तो हस्तगत ही है।

पुण्योऽयमितिहासाख्यः पवित्रं चेदमुत्तमम्।
कृष्णेन मुनिना विप्रनिर्मितं सत्यवादिना॥
सर्वज्ञेन विधिज्ञेन धर्मज्ञानवता सता।
अतीन्द्रियेण शुचिना तपसा भावितात्मना॥
ऐश्वर्ये वर्तता चैव सांख्ययोगवता तथा।
नैकतन्त्रविबुद्धेन दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा॥
कीर्तिं प्रथयता लोके पाण्डवानां महात्मनाम्।
अन्येषां क्षत्रियाणां च भूरिद्रविणतेजसाम्॥

श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी सत्यवादी, सर्वज्ञ, शास्त्रविधिके ज्ञाता, धर्मज्ञानयुक्त संत, अतीन्द्रियज्ञानी, पवित्र, तपस्याके द्वारा शुद्धचित्त, ऐश्वर्यवान्, सांख्ययोगी, योगनिष्ठ तथा अनेक

शास्त्रोंके ज्ञाता तथा दिव्यदृष्टिसम्पन्न हैं। उन्होंने अपनी दिव्यदृष्टिसे देखकर ही महात्मा पाण्डव तथा अन्यान्य महान् तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली क्षत्रियोंकी कीर्तिको जगत्में प्रसिद्ध किया है। उन्होंने 'इतिहास' नामसे प्रसिद्ध इस पुण्यमय पवित्र महाभारतकी रचना की है, इसीसे यह ऐसा उत्तम हुआ है।

अष्टादशपुराणानां श्रवणाद् यत् फलं भवेत्।
तत् फलं समवाप्नोति वैष्णवो नात्र संशयः॥
स्त्रियश्च पुरुषाश्चैव वैष्णवं पदमाप्नुयुः।
स्त्रीभिश्च पुत्रकामाभिः श्रोतव्यं वैष्णवं यशः॥

अठारह पुराणोंके श्रवणसे जो फल होता है, वही फल महाभारतके श्रवणसे वैष्णवोंको प्राप्त होता है—इसमें संदेह नहीं है। स्त्री और पुरुष इस महाभारतके श्रवणसे वैष्णव पदको प्राप्त कर सकते हैं। पुत्रकी इच्छावाली स्त्रियोंको तो भगवान् विष्णुकी कीर्तिरूप महाभारत अवश्य सुनना चाहिये।

नरेण धर्मकामेन सर्वः श्रोतव्य इत्यपि।
निखिलेनेतिहासोऽयं ततः सिद्धिमवाप्नुयात्॥
शृण्वञ्छ्राद्धः पुण्यशीलः श्रावयंश्चेदमद्भुतम्।
नरः फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥

धर्मकी कामनावाले मनुष्यको यह सम्पूर्ण इतिहास सुनना चाहिये, इससे सिद्धिकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य श्रद्धायुक्त और पुण्यस्वभाव होकर इस अद्भुत इतिहासका श्रवण करता है या कराता है, वह राजसूय और अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है।

त्रिभिर्वर्षैर्लब्धकामः कृष्णद्वैपायनो मुनिः।
नित्योत्थितः शुचिः शक्तो महाभारतमादितः॥
तपो नियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा।
तस्मान्नियमसंयुक्तैः श्रोतव्यं ब्राह्मणैरिदम्॥

शक्तिशाली श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासदेव पवित्रताके साथ तीन वर्ष लगातार लगे रहकर इसकी प्रारम्भसे रचना करके पूर्ण-मनोरथ हुए थे। महर्षि व्यासने तप और नियम धारण करके इसकी रचना की थी। अतएव ब्राह्मणोंको भी नियमयुक्त होकर ही इसका श्रवण-कीर्तन करना चाहिये।

महीं विजयते राजा शत्रूंश्चापि पराजयेत्।
इदं पुंसवनं श्रेष्ठमिदं स्वस्त्ययनं महत्॥
महिषीयुवराजाभ्यां श्रोतव्यं बहुशस्तथा।
वीरं जनयते पुत्रं कन्यां वा राज्यभागिनीम्॥

इस इतिहासके सुननेसे राजा पृथ्वीपर विजय प्राप्त करता तथा शत्रुओंको पराजित करता है। उसे श्रेष्ठ पुत्रकी प्राप्ति और महान् कल्याण होता है। यह इतिहास राजरानियोंको अपने युवराजके साथ बार-बार सुनना चाहिये। इससे वीर पुत्रका जन्म होता है अथवा राज्यभागिनी कन्या होती है।

यश्चेदं श्रावयेद् विद्वान् सदा पर्वणि पर्वणि।
धूतपाप्मा जितस्वर्गो ब्रह्मभूयाय कल्पते॥
यश्चेदं श्रावयेच्छ्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः।
अक्षय्यमन्नपानं वै पितॄंस्तस्योपतिष्ठते॥

जो विद्वान् पुरुष सदा प्रत्येक पर्वपर इसका श्रवण कराता है, वह पापरहित और स्वर्गविजयी होकर ब्रह्मको प्राप्त होता है। जो पुरुष श्राद्धके अवसरपर ब्राह्मणोंको इसका एक पाद भी श्रवण कराता है, उसके पितृगण अक्षय अन्नपानको प्राप्त करते हैं।

इतिहासमिमं पुण्यं महार्थं वेदसम्मितम्।
व्यासोक्तं श्रूयते येन कृत्वा ब्राह्मणमग्रतः॥
स नरः सर्वकामांश्च कीर्तिं प्राप्येह शौनक।
गच्छेत् परमिकां सिद्धिमत्र मे नास्ति संशयः॥

हे शौनक! जो मनुष्य व्यासजीके द्वारा कथित महान् अर्थमय और वेदतुल्य इस पवित्र इतिहासका श्रेष्ठ ब्राह्मणके द्वारा श्रवण करता है, वह इस लोकमें सब मनोरथोंको और कीर्तिको प्राप्त करता है और अन्तमें परमसिद्धि मोक्षको प्राप्त होता है, इसमें संदेह नहीं है।

श्रावयेद् ब्राह्मणाञ्छ्राद्धे यश्चैनं पादमन्ततः।
अक्षय्यं तस्य तच्छ्राद्धमुपावर्तेत् पितॄनिह॥
भारतं परमं पुण्यं भारते विविधाः कथाः।
भारतं सेव्यते देवैर्भारतं परमं पदम्॥

जो मनुष्य श्राद्धके अन्तमें इसका कम-से-कम एक पाद भी ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसका श्राद्ध उसके पितृगणको अक्षय होकर प्राप्त होता है। महाभारत परमपुण्यदायक है, इसमें विविध कथाएँ हैं, देवता भी महाभारतका सेवन करते हैं; क्योंकि महाभारतसे परमपदकी प्राप्ति होती है।

भारतं सर्वशास्त्राणामुत्तमं भरतर्षभ।
भारतात् प्राप्यते मोक्षस्तत्त्वमेतद् ब्रवीमि तत्॥
एवमेतन्महाराज नात्र कार्या विचारणा।
श्रद्दधानेन वै भाव्यमेवमाह गुरुर्मम॥

हे भरतश्रेष्ठ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ कि महाभारत सभी शास्त्रोंमें उत्तम है, और उसके श्रवण-कीर्तनसे मोक्षकी प्राप्ति होती है—यह मैं तुमसे यथार्थ कहता हूँ। हे महाराज! मैंने जो कुछ कहा है, वह ऐसा ही है; यहाँ कोई विचार-वितर्क नहीं करना है। मेरे गुरुने भी मुझसे यही कहा है कि महाभारतपर मनुष्यको श्रद्धावान् होना चाहिये।

वेदे रामायणे पुण्ये भारते भरतर्षभ।
आदौ चान्ते च मध्ये च हरिः सर्वत्र गीयते॥
भारतश्रवणे राजन् पारणे च नृपोत्तम।
सदा यत्नवता भाव्यं श्रेयस्तु परमिच्छता॥

हे भरतर्षभ! वेद, रामायण और पवित्र महाभारत—इन सबमें आदि, मध्य और अन्तमें सर्वत्र श्रीहरिका ही कीर्तन किया गया है। अतः हे नृपश्रेष्ठ! उत्तम श्रेय—मोक्षकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक पुरुषको महाभारतका श्रवण और पारायण करनेमें सदा प्रयत्नवान् रहना चाहिये।

सम्पूर्ण महाभारतकी श्लोक-संख्या (अनुष्टुप् छन्दके अनुसार)

	उत्तरभारतीय पाठ	दाक्षिणात्य पाठ	उवाच	कुल
आदिपर्व	८८९०	७३६॥	१०६०	१०६८६॥
सभापर्व	२८१३=	१२४३।=	३८४	४४४०॥
वनपर्व	१२१८८॥।=	८७॥	६८७	१२९६३।=
विराटपर्व	२४०८॥	२८२॥	३२४	३०१५
उद्योगपर्व	७०५६॥।≡	७६–	५७४	७७०७
भीष्मपर्व	६०२२।–	७७॥≡	२६७	६३६७
द्रोणपर्व	९७८०।–	१३६॥।=	४४८	१०३६५≡
कर्णपर्व	५३४०।–	१६४	२२९	५७३३।–
शल्यपर्व	३६८९=	४८॥।=	१६६	३९०४
सौप्तिकपर्व	८०९॥।	१	४४	८५४॥।
स्त्रीपर्व	८२८॥।=	१	६०	८८९॥।=
शान्तिपर्व	१४२७१॥≡	४५३॥।=	११३९	१५८६४॥–
अनुशासनपर्व	७८४०।≡	१९७०॥	११२१	१०९३१॥।≡
आश्वमेधिकपर्व	२९१७॥।≡	१२९९।=	४०३	४६२०।–
आश्रमवासिकपर्व	११०७॥।	१॥	७८	११८९।
मौसलपर्व	३०१।	३॥	१६	३२०॥।
महाप्रस्थानिकपर्व	११४॥।	×	२२	१३६॥।
स्वर्गारोहणपर्व	२१८॥=	×	११	२२९॥=
कुल संख्या	८६६००॥–	६५८४=	७०३३	१००२१७॥≡